(ब्र०) कृष्ण दत्त बनाम शृङ्गी ऋषि

पोल प्रकाश

स्व० स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती
(पूर्वनाम-श्री पं० पूर्णचन्द्र जी आर्य, सिद्धान्तभूषण)
भूतपूर्व महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर
आर्य समाज, बड़ौत जिला बागपत (उ०प्र०)
आर्य समाज, बुढ़ाना द्वार, मेरठ

https://t.me/AryavartPustakalay

ओ३म्

(ब्र०) कृष्ण दत्त बनाम शृङ्गी ऋषि

पोल प्रकाश

लेखक—

(स्व०) स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती

(पूर्वनाम-श्री पं० पूर्णचन्द्र जी आर्य, सिद्धान्तभूषण)

भूतपूर्व महोपदेशक, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर

आर्य समाज, बड़ौत जिला बागपत (उ०प्र०)

आर्य समाज, बुढ़ाना द्वार, मेरठ

सम्पादकः

डॉ० वेदपाल

प्रकाशकः

वेद प्रकाश तोमर

द्वितीयावृत्ति १००० सम्वत् 2076 वि०

ओ३म्

भारतीयता एवं वैदिक धर्म के

सच्चे संदेशवाहक

स्व. स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती

13 मार्च 1900 – 20 दिसम्बर 1985

लेखक का संक्षिप्त जीवन परिचय

भारतीय एवं वैदिक धर्म के –

सच्चे सन्देश वाहक "श्री पं० पूर्णचन्द्र आर्य"

(स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती)

पं० पूर्णचन्द्र आर्य का जन्म 13 मार्च सन् 1900 को बागपत जिले (पूर्व मेरठ) के ग्राम बूढ़पुर में चौ. लज्जाराम के परिवार में हुआ था। यह परिवार अपनी देशभक्ति व वैदिक सिद्धान्तों के लिए पिछली शताब्दी से इस क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान रखता रहा है। पंडित पूर्णचन्द्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बड़ौत जाट वैदिक स्कूल में हुई। एस.एल.सी. की परीक्षा उन्होंने मेरठ कालेज से उत्तीर्ण की। पंडित जी का विवाह सन् 1925 में श्रीमती यशोदा देवी से हुआ। परिवार में तीन पुत्र, बड़े स्व. श्री यशोवर्धन शास्त्री (पूर्व प्रधानाचार्य सरूरपुर, खेड़की), श्री वेद प्रकाश तोमर (पूर्व चकबन्दी अधिकारी व भाजपा नेता), स्व. डॉ. शिवराज सिंह तथा एक पुत्री श्रीमती शकुन्तला हुए। श्री पूर्णचन्द्र जी ने श्रीमद् दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय लाहौर से सिद्धान्त भूषण-(उपदेशक) की उपाधि ली तथा वहां रहकर भारत के शीर्ष क्रांतिकारियों एवं स्वतन्त्रता सेनानियों के सम्पर्क में रहे। उनके जीवन का मुख्य मोड़ आता है सन् 1921 में जब उनका चयन पुलिस सब इंस्पेक्टर जैसे रौबीले पद पर हो गया तथा कृषक परिवार को आजीविका का अच्छा सहारा मिल गया, परन्तु महात्मा गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन की अग्नि आपसे अछूती न रही और आपने साबरमती आश्रम जाकर गांधी जी के चरणों में बैठकर देश सेवा तथा

स्वतन्त्रता प्राप्ति की सौगन्ध ली और अंग्रेज सरकार की पुलिस की नौकरी को लात मार दी, तत्पश्चात् पूरा जीवन राष्ट्र सेवा, आर्य समाज व वैदिक सिद्धान्तों के लिये न्यौछावर कर दिया। सन् 1921 में आपको 3 मास की कैद तथा 1931 में नमक कानून तोड़ने पर 10 माह का सश्रम कारावास झेलना पड़ा। 1937 तथा 1944 में हैदराबाद सत्याग्रह में जोर शोर से हिस्सा लिया। हरियाणा की जींद तहसील से सौ सत्याग्रहियों का जत्था लेकर वहां आन्दोलन किया व जेल गये। कश्मीर में 1948 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने आपको हिन्दुओं का मनोबल बढ़ाने हेतु वहाँ भेजा। पंडित जी करीब नौ भाषाओं के ज्ञाता थे तथा वैदिक साहित्य पर पूरी पकड़ थी, कुरान, गीता उन्हें कंठस्थ याद थी। कुरान के ऊपर व्याख्या करने वाला उस वक्त आर्य समाज में आपके अलावा दूसरा नहीं था।

1950-1960 के दशक में पं. पूर्णचन्द्र आर्य जी का मेरठ की ऐतिहासिक बुढ़ाना गेट आर्य समाज से गहरा सम्बन्ध रहा है। पंडित पूर्णचन्द्र जी उपदेशक के रूप में अपने पाण्डित्य की छाप यहाँ छोड़ते गये, दूर-दूर से आर्यजन उनकी निर्भीक, ओजस्वी एवं विलक्षण वाणी सुनने यहाँ आया करते थे। यहीं रहकर उन्होंने ब्रह्मकुमारी समाज के खिलाफ एक जन आन्दोलन का भी नेतृत्व किया था। यहीं से आपने आर्य स्त्री समाज बुढ़ाना द्वार के प्रयास से एक पत्रक "ब्रह्मकुमारियों के षड्यंत्र से सावधान" छपवाकर इलाके में बंटवाया तथा ब्रह्मकुमारी समाज के संस्थापक लेखराज का चिट्ठा खोला।

राष्ट्र-सेवा व परोपकार की जो सौगन्ध खायी उसके बदले उन्होंने कभी राजनीतिक इच्छा जाहिर नहीं की। कई बार बागपत जिले के विधानसभा प्रत्याशी बनाने की कांग्रेस की इच्छा को नकार दिया तथा अपने प्रिय मित्र चौ. चरण सिंह जी जो उन्हें अग्रज की भांति सम्मान देते

थे, को बागपत क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्थापित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आप छूआछूत व जात-पात के घोर विरोधी थे। हरिजन उत्थान के लिए लगातार प्रयासरत रहते थे। गांव में दलितों को अपने कुंऐ पर पानी भरने की इजाजत दिलवा रखी थी। शुद्धि आन्दोलन के रूप में आप द्वारा किया गया प्रयास जिसमें जिवाना गुलियान के एक मुस्लिम परिवार को शुद्ध कर अपने परिवार की बेटी से शादी की और आज यह परिवार पूर्ण रूप से सम्पन्न है। पंडित जी की करनी व कथनी में कोई लेशमात्र का भी अन्तर नहीं था। क्षत्रिय परिवार में पैदा होने पर भी इनकी विद्वत्ता तथा पाण्डित्य से प्रभावित होकर सब ने आपको पंडित जी की उपाधि दी। आप पूरा जीवन स्वामी दयानन्द के आदर्शों पर चलते हुए 17 जनवरी, 1971 को जनता वैदिक इन्टर कॉलिज के विशाल प्रागंण में हजारों लोगों के सम्मुख चौ. चरण सिंह जी की अध्यक्षता में स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती जी से संन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती कहलाये। संन्यास आश्रम में रहते हुये आपने अपना पूरा समय अध्ययन, चिंतन व लेखन में लगा दिया। जहां भी आपको वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत बातें पता चलीं आपने तुरन्त अपनी लेखनी उठा ली। पहली पुस्तक उन्होंने बरनावा के पाखण्डी कृष्णदत्त ब्रह्मचारी की पोल खोलते हुये लिखी "पोल प्रकाश", दूसरी आधुनिक वैज्ञानिक कसौटी पर सिद्ध "वृक्ष जीवधारी है"। तीसरी शोधात्मक पुस्तक "योगी का आत्मचरित्र एक षड़यन्त्र है" लिखी, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर श्री दीनबन्धु शास्त्री, आनन्द स्वामी एण्ड कम्पनी द्वारा रचित पुस्तक "योगी का आत्मचरित्र" कोरी बकवास व पाखण्ड साबित होती है। चौथी पुस्तक है "मानव शरीर और जीवात्मा" कुछ अन्य अप्रकाशित पुस्तकें जैसे "मुसलमान भाईयों से बिरादराना अपील" एवं "दयानन्द व उनका योग" तथा ईसा की मृत्यु का रहस्य भी है।

पं. पूर्णचन्द्र आर्य (स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती) जी ने अपना पूरा जीवन वैदिक सिद्धान्तों पर चलते हुए 20 दिसम्बर सन् 1985 को अन्तिम सन्देश देते हुए कहा "ऋषि दयानन्द जी महाराज के बताये रास्ते पर चलना" तथा **ओ३म्** का उच्चारण करते-करते चिर निद्रा में विलीन हो गये।

आज भी इस आर्य परिवार की पाँचवी पीढ़ी भी देशभक्ति, समाज सेवा व आर्य परम्पराओं को पल्लवित व पोषित कर रही है। परिवार ने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी के साहित्य को पुनः आर्य जगत् के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है इस पुस्तक के अधिकाधिक प्रचार प्रसार से ऋषि दयानन्द के पावन जीवन की सुरक्षा हो सकेगी।

ओ३म्

प्राक्कथन

आर्य विद्वान् यदा कदा ऐसे विधर्मी सम्प्रदायों की गतिविधियों पर तो दृष्टिपात कर लेते हैं जो खुल्लम खुल्ला वैदिक मान्यताओं, वैदिक साहित्य, वैदिक संस्कृति और वैदिक इतिहास का खण्डन करते रहते हैं, परन्तु ऐसे सम्प्रदायों की ओर इन विद्वानों की दृष्टि नहीं जाती जो आस्तीन के सांप की भांति सामने तो दिखाई नहीं देता परन्तु आस्तीन के अन्दर रहता हुआ ही मनुष्य को डस लेता है। ऐसा एक सम्प्रदाय है 'वैदिक अनुसन्धान समिति'।

यह नाम बड़ा आकर्षक और रोचक है। इसको सुनकर ऐसा भान होने लगता है कि मानों वेदों के प्रकाण्ड पण्डितों की कोई ऐसी समिति स्थापित हो गई है जो वेदों के ऐसे 2 गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करेगी जिनका अभी तक किसी को पता नहीं था परन्तु 'वैदिक प्रवचन' की तीसरी पुस्तक की भूमिका में 'वैदिक अनुसन्धान समिति कि स्थापना क्यों?' को पढ़कर पता चला कि 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और!' इस पुस्तक में क्यों का जो उत्तर दिया गया है वह इस प्रकार है:—"जब कृष्णदत्त के प्रवचन आर्य समाज विनयनगर में प्रारम्भ हुये और उसके लिये एक प्रवचन अनुसन्धान समिति का आर्य समाज विनय नगर के तत्त्वावधान में निर्माण किया गया...इसी बीच में कुछ ऐसी घटनायें और वातावरण बना जहाँ कुछ व्यक्तियों और विद्वानों ने...इसके विपरीत यह किया कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त की बातों में कोई सार नहीं ये प्रवचन बन्द होने चाहिये......इन कारणों से आर्य जगत् में दो विचार पनपे, एक विरोधी, दूसरा समर्थक। समर्थकों द्वारा यह संङ्घर्ष सदा के लिये समाप्त करने के लिये प्रवचन अनुसन्धान समिति को तोड़ दिया तथा नये रूप में 'वैदिक अनुसन्धान समिति' का गठन किया गया जो कि

स्वतन्त्र रूप से इन प्रवचनों का प्रकाशन करती है और ब्रह्मचारी जी के प्रवचन आदि का आयोजन करती है...ब्रह्मचारी जी के विषय में भी समिति का बहुत कुछ निर्णय हो गया है...कुछ समय बाद समिति अपने निर्णयों से विद्वानों एवं जन साधारण को अवगत करायेगी।''

'वेद प्रकाश शर्मा' के इस लेख को पढ़ने से पता चलता है कि कृष्ण-दत्त के प्रवचनों का सुनकर विनयनगर आर्य समाज के कुछ बुद्धिमान् लोगों को यह जिज्ञासा हुई कि ये प्रवचन आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं या नहीं? और जो बातें वेद के नाम से कही जाती हैं वे वेदों में हैं या नहीं? आर्यसमाज में ऐसीं दृढ़धारणा वाले और बुद्धिमान् कुछ लोग अवश्य होते हैं जो हर समय सतर्क रहते हैं और यह देखते हैं कि कोई बात आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द और वेदों के विरुद्ध ने हो जाये। इस लिये वहां 'प्रवचन अनुसन्धान समिति' का निर्माण करना आवश्यक था। विद्वानों ने अनुसन्धान किया और कृष्णदत्त के प्रवचनों में बहुत सी बातें आर्य समाज के सिद्धान्तों के और वेदों के विरुद्ध पाई, तो उन्होंने कृष्णदत्त के प्रवचनों को निःसार पाया और आर्य समाज के तत्त्वावधान में इस प्रकार के प्रवचनों का विरोध किया। परन्तु आर्य समाज में ऐसे लोग भी तो आ जाते हैं जिनका आर्य समाज के सिद्धान्तों से कोई परिचय नहीं होता वे सतवचनी और अन्धविश्वासी होते हैं। ऐसे लोगों की दाल आर्य समाज में कैसे गल सकती थी जो कृष्णदत्त को शृङ्गी ऋषि का अवतार समझते हैं और उसकी वाणी का 'प्रभुप्रेरणा से प्राप्त' (खुदाई इलहाम) समझते हैं और उसी को वेद मानते हैं? इस लिये 'प्रवचन अनुसन्धान समिति' तोड़ दी गई और कृष्णदत्त के अन्धे अनुयाइयों ने आर्य समाज से अलग होकर आर्य जनता को धोखे में डालने के लिये 'वैदिक अनुसन्धान समिति' के नाम से एक अलग सम्प्रदाय की स्थापना कर दी। और अपनी वेद विरुद्धता पर पर्दा डालने

के लिये धन लोलुप पण्डितों को दक्षिणा का लोभ देकर वेद पारायण यज्ञ भी कराती रही और आर्य जनता में यही ढिन्ढोरा पीटती रही कि कृष्णदत के प्रवचन आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार है।' परन्तु यह सब धोखा है। आर्य जनता को इस धोखे से बचाने के लिये ही मैंने यह पुस्तक लिखी है। आर्य जनता को यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि भेड़ की खाल में भेड़िया छुपा हुआ है इससे बचना चहिये और अपने परिचितों को भी सावधान कर देना चाहिये! मुझे पता है कि एक जगह एक शराब की मिल के मालिक प्रतिवर्ष शराब की भट्टी को चालू करने के लिये वेद परायण यज्ञ कराते हैं और उस यज्ञ में कई आर्य संन्यासी और पंडित दक्षिणा के लोभ में वेद परायण यज्ञ करते हैं और सेठ साहब को आशीर्वाद देते हैं इसी प्रकार से 'वैदिक अनुसन्धान समिति' वैदिक यज्ञ जैसे पवित्र कर्म की ओट में अपनी व्यापारिक कम्पनी की उन्नति के लिये कृष्ण दत्त के नाटकीय प्रवचन कराती है और उन प्रवचनों को 'वैदिक प्रवचन' के नाम से सहस्त्रों की संख्या में प्रकाशित कराती है। इन प्रवचनों में मैंने आज तक चारों वेदों के किसी एक मन्त्र को भी नहीं देखा! जनता को धोखे में डालने के लिये कई स्थलों पर यह कहा गया है कि 'वेदों की 1127 शाखाओं में से कई शाखायें लुप्त हैं। कृष्णदत्त उन ही लुप्त शाखाओं का पाठ करता है।'' परन्तु तथाकथित समिति का यह कोरा झूठ है। वेद की कोई शाखा इस प्रकार की नहीं जिसमें मूल वेदों के मन्त्र न हों प्राचीन शाखाओं में चारों वेदों के सब मन्त्रों, शब्दों तथा अक्षरों तक को सुरक्षित रखने के लिये प्रयास किया था और कई प्रकार के पाठ रक्खे थे—जैसे संहिता पाठ, पदपाठ और क्रम पाठ। परन्तु इन पाठों में मूलवेद के मन्त्रों के अतिरिक्त एक शब्द भी बाहर का नहीं होता था, परन्तु कृष्णदत्त जो 'गुणमुण' करता है उसमें एक मन्त्र या एक पद भी वेद का नहीं होता! और न ही कोई

भाषा होती है। वह संस्कृत भाषा के कुछ अपभ्रंश शब्दों को बिना किसी नियम के उच्चारण कर देता है और तथाकथित समिति उन्हीं भ्रष्ट शब्दों को वेद प्रवचन के नाम से प्रचारित करती है इसी समिति के किसी पढ़े लिखे शास्त्री ने कृष्णदत को सुझाया कि देखो वेद का एक पाठ क्रमपाठ भी कहलाता हैं और एक जटा पाठ भी कहलाता है जटा पाठ के अन्तर्गत अनुक्रम, उत्क्रम व्युत्क्रम, अभिक्रम और संक्रम ये पांच क्रम होते हैं! संहिता पाठ को विशुद्ध रखने के लिये इन क्रमों की रचना की गई थी इस क्रम रचना को संहिता की तुलना में विकृति कहा गया विकृति आठ प्रकार की कही जाती है—जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन, कृष्णदत्त की स्मृति में... जटा, माला और घन रह गया और शेष भूल गया। किसी से उसने विसर्ग, उदात्त और अनुदात्त शब्दों को भी सुना हुआ था तो उस सुनी सुनाई बात को वह कई बार कहता। 'देखो हमने जटा, माला, घन, विसर्ग, उदात्त अनुदात्त पाठ किया है। विद्वान् व्यक्ति तो इस पाखण्ड को सुनकर हंस देता है, परन्तु मूर्ख और अन्धविश्वासी जमघट वाह! वाह ! करने लगता है। आर्य जनता की इस दयनीय अवस्था पर मुझे तरस आता है। इस लिये समाज के प्रहरी विद्वान् लोगों से मैं सानुरोध प्रार्थना करता हूँ कि वे इन पाखण्डों से आर्य समाज की भोली भाली जनता की रक्षा करें। विद्या की सफलता इसी में है कि विद्या रूपी सूर्य के प्रकाश से अविद्यान्धार का नाश करके मनुष्य जाति का कल्याण करें। इति

पूर्णानन्द सरस्वती

आषाढ़

सम्वत् 2033 वि०

ओ३म्

मैं जब कभी प्राचारार्थ बाहर जाता हूँ तो बहुत से लोग मेरे पास आते हैं और मेरे से प्रश्न करते हैं कि बरनावा में एक लाखा मण्डप में जो कृष्णदत्त नाम का व्यक्ति रहता है। वह स्वप्न का नाटक रचकर लेटे-लेटे गर्दन हिलाकर कुछ बड़बड़ाता सा है, उस बड़ बड़ाने में कुछ वेद मन्त्रों जैसी ध्वनि सी उत्पन्न होती है और कुछ बनावटी सी हिन्दी में कथा के रूप में कुछ कहता है उसमें कुछ पुराने इतिहास की बातें होती हैं और कुछ आजकल की राजनीति की बातें होती हैं तथा कुछ आर्य समाज के प्रचारकों जैसी समाज सुधार की बातें होती हैं। वह अपने पिछले जन्म की बातें भी कहता है और बतलाता है कि मैं लाखों वर्षों पहले श्रृङ्गी ऋषि के रूप में था और महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ भी कराया था। वह प्राय: ऐसी बातें भी कहता है जिनका वर्णन पहले इतिहास में नहीं मिलता। क्या अपने भी कभी कृष्णदत्त के प्रदर्शनों को देखा है और उनके प्रवचन सुने हैं?

मेरा इस सम्बन्ध में निवेदन यह है कि मैंने दो बार कृष्णदत्त के प्रवचनों को बड़े ध्यान से सुना है और उसकी चेष्टाओं को ध्यान से देखा है। पहली बार सन् 1957 में मेरठ में कचहरी के पास पुलिस क्लब में दूसरी बार सन् 1970 में बरनावा लाखा मण्डप में। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों के टेप रिकार्ड भी बड़े ध्यान से पढ़ता रहता हूँ इधर उधर से भी उसकी दिनचर्या के सम्बन्ध में भी अनेक व्यक्तियों से पूछता रहता हूँ अब तक मैं कृष्णदत्त के प्रवचनों के लगभग 13 टेप रिकार्ड पढ़ चुका हूँ। कई रिकार्ड तो दो-दो तीन-तीन बार भी पढ़े हैं। मैंने कई बार एकान्त में बैठकर कृष्णदत्त की इन सब चेष्टाओं पर गहरा

विचार भी किया है परन्तु मैं अन्त में इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि कृष्णदत्त का यह कहना कि मैं पहले शृङ्गी ऋषि था सर्वथा झूठ है। इसमें लेशमात्र भी सचाई नहीं है।

प्रश्न—कृष्णदत्त के जीवन चरित्र से पता चलता है कि वह अत्यन्त गरीब और असभ्य नीच कुल में उत्पन्न हुआ है। इसलिये उसके माता पिता की ओर से उसकी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध न हो सका। वह किसी पाठशाला या स्कूल में पढ़ने नहीं गया। फिर भी वह अपने प्रवचनों में इतने ऊँचे दर्जे के ज्ञान विज्ञान की बातें बड़ी ओजस्वी भाषा में कैसे प्रकट करता है और वह भी एक विशेष स्थिति में—यानि सुषुप्ति अवस्था में गर्दन हिलाते हुये? इससे पता चलता है कि इनके शरीर में कोई ओपरी माया काम करती है अर्थात् पूर्व जन्म के शृङ्गी ऋषि की आत्मा विराजमान रहती है।

उत्तर—यद्यपि कृष्णदत्त एक अत्यन्त गरीब और असभ्य नीच कुल में उत्पन्न हुआ है। इसलिये उसकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध उसके माता पिता की ओर से नहीं हो सका। उसको किसी स्कूल व पाठशाला में अक्षराभ्यास का अवसर नहीं मिला तथापि ज्ञान प्रप्ति के साधान उसको पूर्णरूप में मिले हुये हैं बाह्य ज्ञान प्राप्ति के साधन पांचो ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी सर्वथा स्वस्थ हैं। पांचों कर्मेन्द्रियाँ भी स्वस्थ हैं। अच्छे स्वस्थ शरीर का व्यक्ति है। आन्तरिक ज्ञान प्राप्ति के लिये अच्छा कल्पनाशील मन भी उसके पास है और उसकी स्मरण शक्ति भी पर्याप्त मात्रा में सबल है। उसके बाहर आने जाने में किसी से मिलने जुलने में या किसी से सिखाने में किसी प्रकार की पाबन्दी नहीं है। वह स्वतन्त्र है। समय की भी कोई बाधा नहीं, सिखाने के लिये अनुसन्धान समिति ने प्रबन्ध किया हुआ है।

कृष्णदत्त का लगभग 30 वर्षों से आर्य समाज के साथ सम्बन्ध है। उसके नाम के देहली में आर्य समाज विनय नगर के अड़ौस पड़ौस में ही है। जहाँ बचपन से ही ऐसे आर्य समाजियों का सत्संग प्राप्त होता रहा है। पण्डित सुरेन्द्र शर्मा गौड़ जो 40 व 50 वर्षों तक आर्य समाज के साथ सम्बन्धित रहे हैं। कृष्णदत्त के गुरु कहे जाते हैं। पण्डित वाचस्पति जी आगरे वाले ने जो आर्य समाज बड़ौत वेद सप्ताह के उपलक्ष्य में कथा करने के लिये आए हुये थे उन्होंने मुझे बतलाया कि हमने कृष्णदत्त की प्रवचन की शैली भी सुधारी और कई बातें बतलाई इसके अतिरिक्त 16-17 वर्षों से विशेषतया कृष्णदत को आर्य समाजों के सैकड़ों उत्सवों सम्मेलनों यज्ञानुष्ठानों संस्कारों और वेदकथाओं में जाकर सैकड़ों विद्वानों के भिन्न भिन्न विषयों पर उत्तम मध्यम और निकृष्ट प्रकार व्याख्यान सुनने का अवसर मिला है। इसमें कोई आश्चर्य की कोई बात नहीं कि उसने उन विद्वानों की बातों का सुनकर कुछ को कंठस्थ कर लिया और फिर एक विशेष प्रदर्शन में गर्दन हिलाते हुये कह डाला इस प्रकार के सैकड़ों व्यक्ति वर्तमान काल में मौजूद हैं। जो नियमित रूप से किसी स्कूल या पाठशाला में नहीं पढ़े, परन्तु इधर उधर से बहुत सी बातें सीख लेते हैं और अच्छे, से अच्छा प्रवचन कर सकते हैं। अतः कृष्णदत्त भी एक ऐसा ही व्यक्ति है जिसने दूसरे लोगों से ज्ञान प्राप्त किया और उसी को वह अपने प्रवचनों में प्रकट करता है।

प्रश्न—यह क्या बात है कि कृष्णदत्त जब जागने की अवस्था में होता है तो उसकी जबान बहुत कम खुलती है और उस समय बातें भी बड़ी भोली सी होती हैं और भाषा भी गवारी सी होती हैं। परन्तु जब सुषुप्ति अवस्था में होता है, उसकी गर्दन बड़े जोरों से हिलती है, उसकी जबान भी खुल जाती है। और बातें भी बड़ी विद्वत्तापूर्ण और दार्शनिकों जैसी होती हैं। इससे हम अनुमान प्रमाण से यही नतीजा निकालते हैं कि

सुषुप्ति अवस्था में कृष्णदत्त समाधि अवस्था में होता है। और उसकी वही आत्मा जो पहले शृङ्गी ऋषि के शरीर में थी अपनी पहली यौगिक शक्ति के बल पर ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण प्रवचन करने में समर्थ होती है।

उत्तर—कृष्णदत्त की ऐसी स्थिति को सुषुप्ति या समाधि अवस्था नहीं कह सकते, अपितु इसको एक नाटकीय या नकली अवस्था कह सकते हैं जैसे एक नाटक करने वाला अपनी स्वाभाविक या मातृभाषा का प्रयोग न करके नाटक के पात्र की भाषा का प्रयोग करता है। इसी प्रकार कृष्णदत्त भी नकली भाषा का प्रयोग करता है। यदि दुर्जनतोष न्याय से यह मान लिया जाये कि कृष्णदत्त जान बूझकर ऐसा नहीं करता, अपितु शैशवावस्था से ही कृष्णदत्त की ऐसी अवस्था है। कि जब उसको चित्त लिटा दिया जाता है तो उस समय वह गर्दन हिलाने लगता है। और बोलना आरम्भ कर देता है तो इसके किये भी कल्पनाओं के समुद्र में डुबकी लगाने की आवश्यकता नहीं, इसमें ओपरी माया की कल्पना करनी व्यर्थ है, यह तो शरीर विज्ञान का विषय है। कृष्णदत्त जब चित्त लेटता है, तो उसकी गर्दन जोर जोर से क्यों हिलती है? इसको जानने के लिये मनुष्य के शरीर की रचना पर विचार करना चाहिये। हमारे शरीर का यह ढांचा लगभग 500 मांस पेशियों से बन्धा हुआ है। शरीर में जितनी भी चेष्टायें होती है। वे सब इन पेशियों के सिकोड़ने और खोलने से होती हैं। इन पेशियों को नियन्त्रण में रखने के लिये मस्तिष्क से चेष्टा नाडियां (moter nerves) सब पेशियों के अन्दर और बाहर फैली हुई हैं। ये चेष्टा नाड़ियां भी दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की वे नाड़ियां है। जो मुनष्य की इच्छा के अनुसार पेशियों के सिकोड़ने या फैलने का कारण होती हैं। इसके द्वारा की गई हरकतें या क्रियायें

ऐच्छिक क्रियायें कहलाती हैं। दूसरे प्रकार की नाड़ियां वे होती हैं जो मनुष्य की इच्छा के बिना ही ईश्वरीय प्रबन्ध से मांसपेशियों के अन्दर सिकुड़ने व फैलने की क्रिया करती हैं। इन क्रियाओं को नियन्त्रण में रखने वाली ग्यारहवीं शीर्षण्य नाडी है। जो अपनी शाखाओं सहित गर्दन की इन पेशियों के अन्दर और बाहर फैली हुई। इसके द्वारा ही मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अपनी गर्दन को इधर उधर हिला जुला सकता है या स्थिर रख सकता है। इसी प्रकार से मनुष्य के कंठ और जीभ को बान्धने वाली लगभग 18 पेशियां हैं। और उनको नियन्त्रण में रखने वाली बारहवीं शीर्षण्य नाड़ी है। जो अपनी शाखाओं के साथ कंठ और जीभ की मांसपेशियों को नियन्त्रण में रखती है। इनके द्वारा मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार बोलना गाना इत्यादि कर सकता है।

यद्यपि गर्दन व जीभ आदि में जो क्रियायें होती है वे ऐच्छिक क्रियायें होती हैं तथापि किसी रोग के कारण इनमें अनैच्छिक क्रियायें भी होने लगती हैं जैसाकि हम बहुत से लोगों के सिर या गर्दन इच्छा के बिना भी हर समय हिलता हुआ देखते हैं। इस प्रकार के रोग कुछ तो जन्म से ही होते हैं। और कुछ किन्हीं निमित्तों से वृद्धावस्था आदि में हो जाते हैं। कृष्णदत्त की गर्दन में यह रोग जन्म से ही हैं। कि जब वह चित्त लेट जाता है तो उसकी ग्यारहवीं शीर्षण्य नाड़ी में अनैच्छिक क्रिया आरम्भ हो जाती है और कृष्णदत्त के न चाहने पर भी उसकी गर्दन जोर जोर से हिलने लगती है। शीर्षण्य नाड़ियां 12 होती हैं उनमें से 9वीं 10वीं 11वीं और 12वीं नाड़ियों का उद्‌गम स्थान मस्तिष्क के पश्चिम पिण्ड में होता है। अत: चित्त लेटने पर मस्तिष्क के पिछले भाग पर दबाव पड़ने पर इन नाड़ियों की ऐच्छिक क्रियाओं में बाधा पड़ने से गर्दन की पेशियों में अनैच्छिक कियायें आरम्भ हो जाती है। अनैच्छिक क्रियायें स्वतन्त्र

नाडियों से सम्बन्धित होती हैं। इन स्वतन्त्र नाड़ियों का उद्‌गम स्थान भी मस्तिष्क का पिछला भाग ही होता है। अत: ऐच्छिक क्रियाओं के अभाव में स्वतन्त्र नाड़ियों के द्वारा अनैच्छिक क्रियायें होती हैं।

दूसरा रोग कृष्णदत्त में यह हो सकता है कि उसके कंठ और जिव्हा की पेशियों में जो नाडियां काम करती हैं उनको वह स्वेच्छा से अच्छी तरह से काम में नहीं ला सकता। वह अपने मस्तिष्क में एकत्र हुये विचारों को साधारण अवस्था में अच्छी तरह प्रकट नहीं कर सकता परन्तु जब वह बिलकुल चित्त लेट जाता है तो उसकी गर्दन जोर से हिलने लगती है और गर्दन के हिलने से जिह्वा मूलीय 12 वीं नाडी भी हरकत में आ जाती है और इसका यह परिणाम होता है कि साधारण अवस्था में जो कंठ और जिह्वा यथेच्छा से काम नहीं करते थे वे अब खुल जाते हैं इसलिये वह अपने मस्तिक में एकत्रित हुई ज्ञान राशि को जो उसने अपने प्रकार से उत्सवों, सत्संगों, यज्ञानुष्ठानों, वेद सप्ताहों और वार्तालापों में एकत्रित की थी धड़ल्ले के साथ प्रकट करने में समर्थ हो जाता है इस लिये उसमें किसी ओपरी माया या श्रृङ्गी ऋषि की योगज शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़तीं। दार्शनिक ऋषियों का यह कथन—'उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचते इति बाधित न्याय:' अर्थात् जो व्यक्ति उपस्थित कारणों को छोड़कर अनुपस्थित कारणों की इच्छा करता है वह न्याय के विरुद्ध है।

प्रश्न—कृष्णदत्त के वर्तमान जीवन का कोई अनुभव या ज्ञान उसके प्रवचनों में नहीं होता है वह तो आजकल के किसी आन्दोलन से सर्वथा अनभिज्ञ है। इसलिये आपको ऐसा मानने में क्या आपत्ति है कि कृष्णदत्त के मुख से सुषुप्ति अवस्था में जो कुछ निकलता है वह श्रृङ्गी ऋषि और महानन्द ऋषि के ही उद्‌गार हैं?

उत्तर—ऐसा मानने पर सबसे पहली आपत्ति तो यह है कि शृङ्गी ऋषि या महानन्द ऋषि के काल में आर्यवर्त देश की भाषा संस्कृत थी और सब लोग संस्कृत भाषा के द्वारा ही सब व्यवहार करते थे हिन्दी भाषा का कोई भी रूप उस समय मौजूद नहीं था। हिन्दी भाषा की आयु 7, 8 सौ वर्ष है और आधुनिक हिन्दी जिसमें कृष्णदत्त प्रवचन करता है वह तो 60, 70 वर्ष पहले की नहीं। यदि बोलने वाला कृष्णदत्त नहीं, बल्कि शृङ्गी ऋषि या महानन्द ऋषि है तो उनको संस्कृत में ही बोलना चाहिये था, न कि कृष्णदत्त की भाषा में इससे सिद्ध होता है कि बोलने वाला कृष्णदत्त ही है शृङ्गी या महानन्द आदि बोलने वाले नहीं! और कृष्णदत्त ने भाषा अपने माता पिता आदि पारिवारिक और ग्राम वासियों से और फिर नगरों और अनेक प्रकार के लोगों से मिलकर भाषा सीखी इसलिये यह कहना सर्वथा झूठ है कि कृष्णदत्त को वर्त्तमान जीवन का कुछ अनुभव नहीं। कृष्णदत्त को लगभग 20 वर्ष से सभ्य समाज में विशेषतया आर्य समाज जैसे सर्वोत्कृष्ट समाज का सर्म्पक प्राप्त हो रहा है जिसका यह परिणाम है कि कृष्णदत्त अच्छी सुधरी हुई हिन्दी भाषा के द्वारा प्रवचन कर सकता है। यह भी विचारने की बात है कि यदि कृष्णदत्त के रूप में ऋषि शृङ्गी ही बोलता है और चूंकि कृष्णदत्त ने वर्तमान जन्म में हिन्दी ही सीखी है संस्कृत नहीं, इलिये वह हिन्दी के द्वारा ही प्रवचन करता है तो प्रश्न उठता है कि महानन्द और लोमश ऋषि ने हिन्दी कहाँ सीखी? क्या अन्तरिक्ष में हिन्दी विश्व विद्यालय बना हुआ है जहाँ सूक्ष्म शरीर वाली आत्मायें हिन्दी का अध्ययन करती है? अन्तरिक्ष में दो प्रकार की सूक्ष्म शरीर वाली आत्मायें रहती है। एक क्षुद्र जन्तु मच्छर, भुनगे घुत्ती अदि प्राणधारी दूसरे लिंग शरीर वाली आत्मा। मच्छर भुनगे आदि की तो कोई भाषा ही नहीं होती और लिङ्ग शरीर वाली आत्माओं की अवस्था अनुशयी अवस्था होती है वह अवस्था

https://t.me/AryavartPustakalay

किसी जीव की मृत्यु और जन्म की अन्तराल अवस्था होती है इसमें जीव किसी प्रकार का कर्म या सुख दु:ख का भोग नहीं कर सकता। इस अवस्था में जीव बहुत थोड़े समय तक रहता है। यजुर्वेद अध्याय 39 मन्त्र 6 में इस अवस्था का वर्णन इस प्रकार से किया है:—

सविता प्रथमेऽहन्नग्नि द्वितीये वायुस्तृतीऽयऽआदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमा पञ्चम ऋतु: षष्ठे मरुत:सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे
मित्रो नवमे वरुणो दशमे इन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे॥

इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है—हे मनुष्यो! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्य प्रकाशादि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं तब ही पुण्य पाप कर्म से सुख-दु:ख रूप फलों को भोगते हैं।" इस सिद्धान्त की पुष्टि बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय 6 ब्राह्मण 3 कण्डिका 13 में की गई है महर्षि कपिल ने भी सांख्य शास्त्र में इस विषय पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। अत: कृष्णदत्त की ऐसी कल्पना कि अन्तरिक्ष में लाखों वर्षों की सूक्ष्म शरीर वाली आत्मायें रहती हैं, और उनकी सभायें भी होती हैं और जब लोग चाहे तो कृष्णदत्त की आत्मा वहां जाकर हिन्दी भाषा में प्रवचन भी करती है, वहां महानन्द के साथ प्रश्नोत्तर भी होते हैं, महानन्द रोता धोता भी है और अन्तरिक्ष की सभा में सारी कारवाई कृष्णदत्त की गवारु भाषा में होती है, ये सब बातें वेदविरुद्ध बुद्धि विरुद्ध और मूर्खतापूर्ण है। इन बातों को कोई आंख का अन्धा ही स्वीकार कर सकता है।

कृष्णदत्त जी का कहना है कि समाधि अवस्था में आत्मा का इस शरीर से उत्थान होकर वह अन्तरिक्ष में सूक्ष्म शरीर वाली महान् आत्माओं के समाज में पहुँच जाता है और उस अवस्था में आदि ब्रह्मा से लेकर महाभारत पर्यन्त का सारा ज्ञान और विज्ञान उमड़ पड़ता है।

प्रश्न यह है कि उस समय शृङ्गी ऋषि का करोड़ों वर्षों का अभ्यस्त और अनुभूत संस्कृत भाषा का ज्ञान क्यों नहीं उमड़ पड़ता, क्योंकि प्राचीन ज्ञान और विज्ञान का संस्कृत भाषा के साथ अटूट सम्बन्ध है। यह ध्रुव सत्य है कि भाषा के बिना विचार उत्पन्न नहीं होते और बिना विचार के भाषा नहीं होती। जब ऐसा मान लिया जावेगा कि कृष्ण दत्त को बिना सिखाये ज्ञान विज्ञान की बातें स्वयं पिछले संस्कारों के कारण आ जाती है तो उनसे इसकी आशा करनी स्वभाविक ही है। कि उनको संस्कृत भाषा भी अनायास ही आ जानी चाहिये थी परन्तु वह संस्कृत भाषा का एक वाक्य भी न बोल सकता है और न समझ सकता है। इसलिये उसकी शेष लीला को ढोंग ही समझना चाहिये। इससे यह परिणाम निकलता है कि कृष्ण दत्त के समाज सुधार सम्बन्धी प्रवचन आर्य विद्वानों भजनीकों और आर्य याज्ञिक लोगों के प्रवचनों की अधूरी पधूरी नकल मात्र है। उन लोगों के प्रवचनों के साथ-साथ वह अपनी मनघडन्त बातें मिलाकर चू-चू का मुरब्बा बना देती है। शृङ्गी ऋषि के नाम से वह जो प्राचीन इतिहास की बातें कहता है वे सब कृष्णदत्त की मनघडन्त हैं, वे सब असम्भव, अश्लील और झूठे गपोड़ों से भरी हैं। कृष्णदत्त के इस षडयन्त्र में कुछ स्वार्थी लोग भी सम्मिलित है जो अपने आपको आर्य समाजी भी कहते हैं। उन्होंने भोले आर्य समाजियों को जाल में फसाने के लिए एक ऐसी समिति बनाई हुई है जिसका नाम वैदिक अनुसन्धान समिति रक्खा हुआ है परन्तु वास्तविकता यह है कि यह वैदिक अनुसन्धान समिति नहीं अपितु 'वेद विध्वंसिनी समिति' है। जिसका उद्देश्य वही है जो सदा से म्लेच्छ और असुर लोग वेद की भाषा और भावों को भ्रष्ट करने के लिये करते रहे हैं पहले भी असुर लोगों ने वेदों के नाम से जाली ग्रन्थ बनाये थे। यह समिति कृष्णदत्त के द्वारा कहे गये ऊट पटाँग भ्रष्ट ध्वनियों और असम्बद्ध प्रलापों को

https://t.me/AryavartPustakalay

वेदसंहिताओं के पाठ का नाम देकर पुस्तक रूप में सहस्रों और लाखों की संख्या में छपवा रही है और आर्य समाज तथा ऋषि दयानन्द के वैदिक सिद्धांतों पर पानी फेरने का प्रयत्न कर रही है। इस समिति की ओर से ऐसे व्यक्ति भी नियुक्त हैं जो कृष्णदत्त को हिन्दी पढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। उसको व्याख्यान रटाते हैं और श्लोक तथा मन्त्र रटाने का कार्य करते हैं। कृष्णदत्त की मातृ भाषा हिन्दी होने के कारण वह हिन्दी में रटाये हुये तो प्रवचन ठीक-2 बोल लेता है परन्तु संस्कृत भाषा से सर्वत्र अनभिज्ञ होने के कारण वे मन्त्र और श्लोक सर्वथा अशुद्ध बोले जाते हैं। समिति की ओर से कृष्ण दत्त जी के प्रवचनों का रिकार्ड कराया जाता है, परन्तु टेपरिकार्ड कराने में यह चालाकी बरती है कि उसमें कृष्णदत्त के द्वारा कथित मन्त्रों का टेपरिकार्ड नहीं किया जाता, क्योंकि समिति को भय है कि यदि उसके वेद पाठ सहित टेपरिकार्ड को संस्कृतज्ञ और वेदापाठी लोग सुनेगे या पढ़ेगे तो वे कृष्णदत्त को महामूर्ख और पाखण्डी समझेंगे ओर वे उसका तिरस्कार भी करेंगे। कृष्णदत्त के लेटकर गर्दन हिलाते हुये प्रदर्शन पूर्वक प्रवचन को देखने और सुनने के लिये तो कौतुहल वश अधिकतर अन्ध विश्वासी, अनपढ़ और संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ स्त्री पुरुषों का भीड़ भडक्का ही होता है। अतः ऐसे लोग प्रदर्शन को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं और कृष्णदत्त के अन्दर ओपरी माया समझने लगते हैं। जैसा कि अन्धकारावृत भारतीय जनता हजारों वर्षो से करती चली आई है। स्वार्थ औन धन के लोभ से बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी इस प्रकार के ढोगों का समर्थन करते रहे हैं मैने तथा कथित वैदिक समिति द्वारा छपवाई हुई 13 पुस्तकों को ध्यानपूर्वक पढ़ा है और वेदों उपनिषदों, दर्शन शास्त्रों वाल्मीकीय रामायण, तुलसीकृत रामायण, महाभारत, चरक, सुश्रुत महर्षि दयानन्दकृत ग्रन्थावली, भारतवर्ष का इतिहास, इस्लाम का इतिहास, ईसा

मसीह की जीवनियों, बाइबिल तथा इंजील की रोशनी में कृष्णदत्त के प्रवचनों की खोज पड़ताल की है। जिसके परिणाम स्वरूप मैंने यह अनुभव किया है। कि वैदिक अनुसन्धान समिति का सारा साहित्य झूठ, छल, कपट, दम्भ, अश्लीलता मूर्खता, षड़यन्त्र और असम्भव बातों से भरा हुआ है। इस साहित्य से वैदिक धर्म, वैदिक साहित्य, वैदिक संस्कृति, वैदिकऋषि मुनि और वैदिक धर्मी राजाओं की उज्वल कीर्ति को कंलक ही लगता है। उनकी श्री वृद्धि कुछ भी नहीं होती!

प्रश्न—श्रीमान् जी ! आपने कृष्णदत्त के प्रवचनों का वैदिक धर्म आदि को कलंक लगाने वाला बतलाया है। हम इस बात पर विश्वास कैसे कर सकते हैं? क्योंकि भारत की साधारण आर्य हिन्दु जनता ने तो हजारों वर्षों से वेदों के और वैदिक साहित्य दर्शन भी नहीं किये! हजारों वर्षों से आर्य हिन्दु जनता का साहित्य' धर्म, संस्कृति और इतिहास आदि सब कुछ भगवान् राम ही रहे हैं। हजारों वर्षों से वही एक हमारा सहारा रहे हैं। उन्ही की चरित्रगाथा हम सुनते रहे हैं। और उन्हीं को अपनी नौका बनाकर हमने हजारों तूफानों को पार करके अपने वैदिक धर्म की रक्षा की है। राम के चरित्र का पता हमें वाल्मीकि ऋषि के लिखे हुये पवित्र ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण के द्वारा मिलता रहा है हमारे लिये धर्म और अधर्म को परखने की कसौटी वाल्मीकीय रामायण ही रही हैं। इस लिये इसके आधार पर ही आप हमें बतलायें कि कृष्णदत्त के प्रवचन वैदिक धर्म का कलंक लगाने वाले हैं? क्योंकि वाल्मीकि ऋषि पूर्ण रूप से वेद धर्मानुयायी थे और वह वेद वेदांग के पूर्ण ज्ञाता थे इसलिये उन्होंने अपने अनुपम काव्य में एक ऐसे ही व्यक्ति के चरित्र का चित्रण किया है जो अपने युग का सर्वश्रष्ठ, वेदवेदागों का ज्ञाता और अपने जीवन को पूर्णरूप से वेदानुकूल बिताने वाला था। और इस प्रकार का व्यक्ति भगवान् राम ही था। जो वैदिकमर्यादा का सर्वांगपूर्ण मूर्तरूप था।

अत: जो व्यक्ति भगवान् राम के उज्ज्वल चरित्र पर किसी प्रकार का कलंक लगता है तो उसको समझो कि वह सर्वथा वेद विरोधी है!

उत्तर—मैं अपकी बात से पूर्णतया सहमत हूँ कि हजारो वर्षो से सर्व साधारण हिन्दू जनता का पथ प्रदर्शक भगवान् राम का पवित्र जीवन चरित्र अर्थात वाल्मीकीय रामायण ही रही है। और मुझे इसी बात का दु:ख है। कि कृष्णदत्त ने वाल्मीकि ऋषि के सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करके ऋष्यशृङ्ग, वसिष्ठ अरुन्धती, दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, राम, लक्ष्मण, सीता और कुश के चरित्रों पर कलंक लगाने का दुष्प्रयत्न किया है।

प्रश्न—क्या आप कृष्णदत्त के प्रवचनों से इस प्रकार की बातें दिखला सकते हैं?

उत्तर—हां! मैं कृष्णदत्त के प्रवचनों में से ऐसी बातें बतला सकता हूँ जो वाल्मीकि जी के कथन के सर्वथा विपरीत तो हैं ही वे सर्वथा वेद विरुद्ध, धर्म विरुद्ध और शिष्टाचार के विरुद्ध भी हैं। पहले ऋष्य शृङ्ग की बात को लीजिये: कृष्णदत्त शृङ्ग ऋषि की बाबत कहता है—

(1) "उस समय मुनिवरो! राजा दशरथ उर्वशी आदियों द्वारा उस ऋषि आत्मा को लाया। कहा जाता है कि वह उस समय 102 वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचारी थे"(पु० 3 पृष्ठ 37)

(2) "जिस समय महाराज शृङ्गी कजली बन से अयोध्या में पुत्रेष्टि यज्ञ के लिये लाया गया तो उस समय वह 188 वर्ष का ब्रह्मचारी था"(पु० 8 पुष्ठ 36)

(3) "(विभाण्डक के पुत्र) उसी बालक की आत्मा का मृतमण्डल में प्रसार हो रहा है जिस मुनिवरों! 178 वर्ष तक देव कन्या का ज्ञान भी नहीं था।" (पु० 6 पुष्प 36)

(4) "इस प्रकार ब्रह्मचारी जी ने अपने एक प्रवचन में बतलाया कि उन्होंने 80 वर्ष की अवस्था में महाराजा दशरथ के यहां पुत्रेष्टि यज्ञ कराया।" (प्रथम पुष्प की भूमिका पृ० 19)

(5) "जब वह राजा दशरथ के यहां यज्ञ शाला में लाये थे, 284 वर्ष तक कोई वस्त्र धारण नहीं किया। (पुष्प 12 पृ० 27)

अब पाठक स्वयं विचार करें कि ये पांच सन्दर्भ कृष्णदत्त के पांच प्रवचनों में से दिये गये हैं जो उसने भिन्न-2 अवसरों पर राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर शृङ्गी ऋषि की आयु के सम्बन्ध में कहे थे। इन सदर्भों के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ के समय शृङ्गी का आयु 101, 188, 178, 180, और 284 वर्ष की बतलायी गई है। क्या कोई व्यक्ति इस गुत्थी को सुलझा सकता है कि एक ही व्यक्ति एक ही समय पर पांच भिन्न 2 आयु का हो? क्या इससे बड़ा झूठ कोई और भी हो सकता है? ये प्रवचन कृष्णदत्त के मुख से निकलते हैं जिसको ऋषि और विभाण्डक का पुत्र कहा गया हैं, इन सन्दर्भों में कृष्णदत्त ने 6 बातें वाल्मीकीय रामायण के विरुद्ध कही है जैसे—(1) राजा दशरथ शृङ्गी को उर्वशी के द्वारा लाया (2) उस समय वह अखण्ड ब्रह्मचारी था (3) उस समय तक उसने किसी देव कन्या को नहीं देखा था (4) उस समय शृङ्गी की आयु 101, 188, 178, 180, 284 वर्ष की (5) वह 284 वर्ष तक सर्वथा नग्न रहा (6) ब्रह्मचर्यावस्था में उसने दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया।" ये सब बातें वाल्मीकि के विरुद्ध हैं। इसके लिये प्रमाण देखिये

वाल्मीकीय रामायण में ऋष्य शृङ्ग का वर्णन

(1) राजा दशरथ अपने मन्त्रियों और रानियों और सेना सहित ऋष्य शृङ्ग को बड़े सत्कार पूर्वक अयोध्या में लाया।

(2) उस समय ऋष्य शृङ्ग ब्रह्मचर्यावस्था में नहीं था प्रत्युत वह उस समय गृहस्थावस्था में था, उसका विवाह राजा रोमपाद की कन्या शान्ता से हो चुका था।

(3) उस समय तक वह सहस्रों स्त्री पुरुषों को देख चुका था, क्योंकि वह गृहस्थावस्था में राजा रोमपाद की राजधानी में ही रहने लगा था

(4) उस समय ऋष्य शृङ्ग की आयु 50 और 60 वर्ष के बीच की थी, क्योंकि शान्ता के विवाह के समय वह आदित्य ब्रह्मचारी था; अतः उस समय वह 48 वर्ष का था विवाह के पश्चात् कई वर्ष तक वह अंग देश में रहा, इसलिये अयोध्या में जाने के समय उसकी आयु 50 वर्ष से अधिक होगी। अर्थात् 50 और 60 के बीच थी।

(5) वह बाल्यावस्था में ही पांच चार वर्ष नग्न रहा होगा, क्योंकि 5 वर्ष या 8 वर्ष की आयु में उसका उपनयन हो गया था। उपनयन के पश्चात् कोई वैदिक धर्मावलम्बी नग्न रहीं रह सकता।

(6) ऋष्य शृङ्ग ने वैदिक मर्यादा के अनुसार गृहस्थाश्रम में रहते हुये ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था, क्योंकि अन्य आश्रम वाले को गृहस्थों के संस्कारादि कराने का अधिकार नहीं।

कृष्ण दत्त का अत्यन्त भयंकर और अक्षम्य अपराधः

कृष्णदत्त का सबसे घृणित अक्षम्य अपराध यह है कि उसने शृङ्गी ऋषि को तो निर्लज्ज सिद्ध किया ही है साथ ही राम लक्ष्मण आदि की पूजनीय माताओं को भी निर्लज्ज बनाने की धृष्टता की है उसने अपने प्रवचन में कहा है;—"जैसे मेरे उस चैतन्य देव परमात्मा ने माता की जो योनि बनाई है वह भी समिधा रूपी बनाई है। उसी प्रकार की हमें यज्ञ शाला बनानी है, उसी प्रकार की उसमें समिधा चुनना है। जैसे-जैसे

समिधाओं को चुनते रहते हैं'' उसी प्रकार उनमें 'भूर्भुव: स्व:' जैसे-जैसे उच्चारण करते रहते हैं। उन्ही मन्त्रों को उच्चारण करते-करते मेरी पुत्रियों के जो घाव होते हैं दोष होते हैं वह उन समिधाओं से और वह जो सामग्री होती है उसकी सुगन्धि से, उसके धूम्र से वह शुद्ध होते चले जाते हैं.........मैंने तीनों रानियों को एक पंक्ति में एकत्रित किया। उस समय मैं यह नहीं जानता था कि पुत्रिवत कैसा होता है। अध्ययन तो किया था योनि भी होती हैं। अंगृत भी होता है इसको मैंने श्रवण तो किया था परन्तु वास्तव में इसके रूप को नहीं जानता था मैंने आयुर्वेद के सिद्धान्त से कहा कि मुझे ज्ञान कराओ, क्योंकि भोली वार्ता इसी प्रकार की होती है। वास्तव में संसार में जिस वाक्य को जो नहीं जानता उस में किसी प्रकार का दोषारोपण भी नहीं होता, उसी प्रकार मैंने कहा कि मुझे अपनी योनियों का दिग्दर्शन कराओ, जब तक मैं योनि को नहीं जानूगाँ तब तक मैं यज्ञशाला भी कैसे बनाऊंगा। परन्तु महर्षि वसिष्ठ के लिये यह एक लज्जा का विषय बन गया था। क्योंकि वह जानते थे इन विषयों को उस समय महारानी अरुन्धती ने कहा था कि भगवान् ! हे ऋषि पुत्र ब्राह्मणसतंग। यह कैसे अपको दृष्टना ब्रह्म उन्होंने कहा कि मुझे दर्शन होने चाहियें। उन सब पुत्रियों ने मुझे अपना अपना दिग्दर्शन कराया दिग्दर्शन कराते मैंने उनकी योनियों को जाना; तीन ही प्रकार की यज्ञशाला बनाई गई एक ही यज्ञशाला में तीन प्रकार का भाव बनाना पड़ा। उस भाव बनाने से तीन ही प्रकार की उसमें योनियां बनाई। उसी प्रकार की योनि ठीक यज्ञशाला ही तो सफल होती है। (पुष्प 13 पृ० 126से 128 तक)

कृष्णदत्त ने 17 जनवरी 1970 को 6 बजे प्रात: इन निर्लज्जता पूर्ण वाममार्गी लीला का वर्णन किया था: यह प्रवचन 13 पुष्प के 110 पृ० से 130 पृ० तक छपा है। इस प्रवचन में सैकड़ों कुंवारी लड़कियां और

विवाहित नवयुवतियां, विवाहित नवयुवक, पिता पुत्र, मां बेटी सभी प्रकार की जनता मौजूद थी। कृष्णदत्त की घृणित से घृणित और अश्लील से अश्लीन बातें सुनकर और बार बार योनि शब्द को सुनकर इनके मन पर किस प्रकार के प्रभाव पड सकते हैं, इस पर पाठक लोग विचार करेंगे क्या यह निर्लज्जता और शरारत की पराकाष्ठा नहीं हैं? क्या यह वाम मार्ग का खुला प्रचार नहीं? अत्यन्त दु:ख की बात है कि एक विक्षिप्त बुद्धि का व्यक्ति भगवान् राम की पूजनीय माताओं को इतनी निर्लज्ज सिद्ध करने का दु:साहस करे और राम को मर्यादा पुरुषोतम मानने वाले लोग ऐसे नीच और भ्रष्ट व्यक्ति को शृङ्गी ऋषि का अवतार माने? धिक्कार है ऐसी आर्य और हिन्दू जनता को!!! यदि इस प्रकार का कोई दु:साहसी व्यक्ति किसी जीती जागती जाति की पूजनीय माताओं बहनों और पुत्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की झूठी और अश्लील बातों का वर्णन सर्व साधारण के सामने कर देता तो उसको क्या दण्ड मिलता इसकी कल्पना कीजिये? वाल्मीकीय रामायण में किसी भी पतिव्रता स्त्री का अन्य पुरुष के सामने नग्न होने का वर्णन नहीं है। वह पुरुष चाहे ऋषि हो महर्षि हो योगी हो आयुर्वेदाचार्य हो! वैदिक धर्म के अनुसार यह महापाप है। ऋग्वेद में आदेश है:—

"अध: पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर । मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ऋ० 8। 33। 19।।

ईश्वर आज्ञा देता है—हे स्त्री नीचे देख, ऊपर न देख गम्भीरता से पांव रखकर चल तेरे अवयव किसी को दिखाई न दे। क्यों ब्रह्मा तेरे अन्दर प्रकट हुआ है। वेद की आज्ञा है। कि स्त्री अपने पति को ही अपने अङ्गों को दिखा सकती है। अन्य पुरुष को नहीं और अपने पति को भी केवल गर्भाधान के समय! ऋग्वेद में लिखा है—

"उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्ये उशती सुवासा।"

ऋ० 10। 71।4।।

अर्थात् किसी वेदज्ञ पुरुष को वेद वाणी स्वयं अपना शरीर अर्थात अपना आशय दिखला देती है। (यहां दृष्टान्त देते हैं) जैसे (सुवासा) मासिक धर्म की निवृत्ति पर स्त्री स्नान आदि करके सुन्दर वस्त्रों को पहने हुये सन्तान की कामना से अपने पति के सामने शरीर को दिखलाती है। वेद की मर्यादा के अनुसार रूग्णावस्था में भी स्त्रियों की चिकित्सा के लिये स्त्रियों को चिकित्सिका नियत किये जाने का प्रबन्ध आदि काल से आर्य लोगों में रहा है। इसलिये आर्यो के इतिहास में कही भी ऐसा वर्णन नहीं है, कि कोई पुरुष या स्त्री नग्न हो कर दूसरों के सामने आते रहे हों! इस प्रकार की वाममार्गी लीला कहीं-2पुराणों में दृष्टि गोचर होती है उस वाममार्गी लीला का प्रचार करके कृष्णदत्त हिन्दु युवकों और युवतियों को पथ भ्रष्ट करना चाहता है! दशरथ की रानियों के सामने श्रृङ्गी के नग्नावस्था में जाकर रानियों को नग्न करने की बात कहकर कृष्णदत्त यह दिखलाना चाहता है कि राजा दशरथ, उसकी रानियां, वसिष्ठ ऋषि, ऋषिपत्नी अरून्धती और स्वयं श्रृङ्गी ऋषि सार्वजनिक रूप से एक दूसरे के सामने नग्न रहकर घूमने में कोई बुराई नहीं समझते थे; कृष्णदत्त ने इस बात को कई जगह दोहराया है। उसके प्रवचनों में गार्गी का सर्वथा नग्नावस्था में राजा जनक की सभा में जाना भी लिखा है। श्रृङ्गी और उसकी पुत्री का नग्नावस्था में साथ-साथ रहना लिखा है। क्या आर्य सन्तान इस प्रकार से वाममार्ग के खुल्लम खुल्ला प्रचार को सहन करती रहेगी?

कृष्णदत्त रानियों के नग्न करने पर ही बस नहीं करता बल्कि यज्ञ शालाओं को भी योनियों के आकार की बनाना चाहता है ताकि सर्व साधारण जनता भी योनियों का दिग्दर्शन कर सकें। महर्षि वाल्मीकि की रामायण में इनमें से एक बात का भी संकेत नहीं हैं और संकेत होता भी

https://t.me/AryavartPustakalay

क्यों? क्योंकि कृष्णदत्त की ये सब लीलायें वेद विरुद्ध, बुद्धि विरुद्ध और लोक मर्यादा के विरुद्ध हैं। ऋष्य शृङ्ग और वसिष्ठ ऋषि पूर्ण रूप से वेदानुयायी थे और उन के चरित्र को लिखने वाले वाल्मीकि ऋषि भी वेदवेदांगों के ज्ञाता पूर्ण ज्ञानी थे। वे इस वाममार्गी लीला का प्रदर्शन क्यों करते?

महर्षि वाल्मीकि के अपने शब्द ऋष्य शृङ्गी के सम्बन्ध में ये हैं:

''सुमन्त जो राजा दशरथ का सूत था उसने राजा को सूचना दी:—

एवमङ्गाधिपेनैव गणकाभि र्ऋषेःसुतः। आनीतोऽवर्षयद्देवः

शान्तताचस्मै प्रदीयते' ऋष्य शृङ्ग स्तु जामाता पुत्रास्तववि-

धास्यति ''बाल० सर्ग 9''

अर्थात् हे राजन् अङ्ग देश के राजा रोमपाद ने ऋषि पुत्र ऋष्यशृङ्ग को गणकों के द्वारा अपने देश में बुलाया उसके आने पर उसने वहां वर्षा करा दी और इस लिये राजा ने अपनी कन्या शान्ता उसको ब्याह दी' वह राजा रोमपाद का जमाई है वह आपको पुत्र दे सकता है।''

''सुमन्त्रस्यवचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथोऽभवत्।

अनुमान्य वसिष्ठश्च सूतवाक्यं निशाम्यच''13॥

सान्तःपुर सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः।

वनानि सरितश्चैव व्यतिक्रम्य शनैःशनैः।॥14॥

अभिक्राम तं देशं यत्र वै मुनिपुंगवः।

आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम् ॥ 15॥

ऋषिपुत्रं ददर्शाथो दीप्यमानमिवानलम् ।

ततो राजा यथान्यायं पूजां चक्रे विशेषतः।॥16॥

सखित्त्वात्तस्य राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।

रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते॥ 17॥

सख्यं संबन्धकं चैव तदा तमपूजयत ।

एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः ॥ 18॥

सप्ताष्टा दिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत् ।

शान्ता तव सुता राजन् सहभर्त्राविशाम्पते ॥ 19॥

मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम् ।

तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः ॥ 20॥

उवाच वचनं विप्र गच्छ त्वं सह भार्यया ॥ 21॥

बाल काण्ड सर्ग 10 श्लो० 13 से 21॥

अर्थात् सुमन्त्र के वचन सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न हो गया। और वसिष्ठ की अनुमति लेकर अपनी पत्नियों और मन्त्रियों सहित वहां के लिये चल पड़ा जहाँ वह द्विज रहता था। वह वनों और नदियों को पार करता हुआ शनैः शनै उस स्थान पर पहुँच गया जहां वह श्रेष्ठ मुनि रहता था। जब रोमपाद के पास रहने वाले उस श्रेष्ठ द्विज के पास राजा दशरथ पहुँचा तो उसने देखा कि वह ऋषि पुत्र अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहा है। फिर राजा रोमपाद ने दशरथ का मित्र होने के नाते से विशेष रूप से बड़े आनन्द और उत्साह से दशरथ की पूजा की। राजा रोमपाद ने ऋषि पुत्र को राजा दशरथ अपनी मित्रता और सम्बन्धों की बात भी बतलायी इस प्रकार से राजा दशरथ रोमपाद से सत्कृत होकर सात आठ दिन तक रोमपाद के पास ठहरा। फिर रोमपाद से कहा की हे राजन् आप पुत्री शान्ता को उसके पति सहित मेरी नगरी में भेज दीजिये? राजा रोमपाद ने इस ऋषि पुत्र को अयोध्या में भेजने का वचन दे दिया और ऋष्यशृङ्ग से कहा कि आप दशरथ के साथ चलें जायें?

ऋष्य शृङ्ग का अयोध्या को जाना

"ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा।

स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सहभार्यया''29॥

अन्तः पुराणि सर्वाणि शान्तांदृष्ट्वा तथा गताम् ।

स भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन्

पूज्यमाना च ताभिः सहराज्ञा चैव विशेषतः।

उवास तत्र सुखिता किञ्चित्कालं सहद्विजा,, 30 31॥

अर्थात् ऋषि पुत्र ने राजा को अपने जाने की अनुमति दे दी और अपनी पत्नी के साथ अयोध्या को चला गया। अन्तः पुर में रहने वाली सभी स्त्रियों ने विशाल नेत्रों वाली शान्ता को पति सहित आई हुई को देख कर प्रीति के कारण आनन्द को प्राप्त किया, वह शान्ता रानियों से और विशेषतया राजा से पूजित होकर कुछ काल तक अपने पति और पुत्रों सहित अयोध्या में रही।

ऋष्य शृङ्ग का पुत्रेष्टि यज्ञ कराना

''ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे।

वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत्''

ततोऽब्रवीदृष्यश‍ृङ्गं दशरथस्तदा।

कुलस्य वर्धनं त्वं तु कर्तु मर्हसि सुव्रत''बा० स० 14 58

मेधावी तु ततोध्यात्वा स किन्चिदिदमुत्तरम ।

लब्धसंज्ञस्ततस्तं वेदज्ञो नृपमब्रबीत् ॥

इंष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्र कारणात् ।

अथर्वशिरसि प्रोक्तै मंन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥

बाल० स० 15 श्ल 1-3

अर्थ—बहुत दिनों के बीत जाने पर सुमनोहर वसन्त ऋतु के प्राप्त होने पर दशरथ ने ऋष्य ऋङ्ग से पुत्रेष्टि कराने का विचार किया। तब राजा दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग से पुत्रेष्टि करने के लिये कहा किहे सुव्रत कुल

https://t.me/AryavartPustakalay

की वृद्धि के लिये यज्ञ करना चाहिये उस मेधावी ने कुछ देर तक समाधिस्थ होकर ध्यान किया फिर समाधि खोलकर राजा को कहा कि हे राजन् मैं अथर्व वेद में कहे हुये मन्त्रों के विधान से अनुभूत पुत्रेष्टि यज्ञ को करूंगा ताकि तुम्हें पुत्रों की प्राप्ति हो जावे। फिर उस ऋषि ने पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ किया और मन्त्रों में कही हुई विधि से अग्नि में आहुतियां डाली

अथवै यजमानस्य पावकादतुलप्रभाम् ।
तप जाम्बूनद मयीं राजतान्त परिच्छदाम् ।
दिव्य पायसपूर्णां पात्री पत्नी मिव प्रियाम् ।
प्रगृह्य विपुलां दोर्म्यां समवेक्ष्याब्रवीदिदम् ॥
इदं तु नृप शार्दूल पायसं देव निर्मितम् ।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्य वर्धनम् ॥

अर्थः—थोडी देर के पश्चात् महाराज दशरथ के आहवनीय अग्नि कुण्ड से अतुल प्रभायुक्त स्वर्ण से बनी हुई दिव्य खीर से भरी हुई और चान्दी के ढकने से ढकी हुई बटलोई ऋष्यशृङ्ग ने दोनों हाथों से उठाकर राजा दशरथ को देकर कहा कि हे सिंह पुरुष महान् विद्वानों से तैयार की हुई इस खीर का ग्रहण करो जो सन्तान को देने वाली, लक्ष्मी और आरोग्यता को देने वाली है। बालकण्ड सर्ग। 19-21॥

ततो दशरथः प्राप्य पायसं देव निर्मितम् ।
मुदा परमया युक्तश्चकाराग्निप्रदक्षिणम् ॥ 22॥
सोन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत् ।
पायसं प्रति गृह्णीश्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः॥ वा० स० 13 ।25
कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धार्ध ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥ बाल सर्ग 13।26

https://t.me/AryavartPustakalay

कैकय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रकारणात्॥ बा० स० 16 श्लोक 27

अर्थ:—फिर राजा दशरथ ने उस खीर को लेकर विद्वानों की प्रदक्षिणा की फिर अन्त: पुर में जाकर दशरथ ने कौसल्या से कहा कि अपने पुत्र की उत्पत्ति के लिये इस खीर को ग्रहण करो राजा दशरथ ने उस खीर में से आधी कौसल्या को देदी और आधी में से आधी में से आधी सुमित्रा को दी और शेष आधी बची हुई कैकेयी को दे दी।

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमास्त्रियो महीपते रुत्तमा

हुताशनादित्य समानतेजसोऽचिरेण गर्भान्प्रपेदिरे तदा ॥ 29॥

अर्थ:—फिर राजा दशरथ की उत्तम स्त्रियों ने महाराज से उत्तम खीर को लेकर खाया और शीघ्र ही उन्होंने अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी गर्भों को धारण किया। यज्ञ की समाप्ति पर सब राजा लोग अपने अपने स्थान पर चले गये और:—

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः।

अनुगम्यमान राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता॥ ब० स० 18

अर्थ:—ऋष्यशृङ्ग भी अपनी पत्नी शान्ता सहित अच्छी प्रकार से पूजित होकर विदा होकर चल दिया और राजा दशरथ उनके पीछे गये।

वाल्मीकीय रामायण में ऋष्यशृङ्ग का इतना ही वर्णन है। जो सर्वथा वेदानुकूल और पवित्रता से भरा हुआ है। कृष्णदत्त के कल्पित शृङ्गी ऋषि के वाममार्गी और भ्रष्ट चरित्र की कोई भी बात इसमें नहीं मिलती।

कृष्णदत्त ने पुत्रेष्टि यज्ञ की सफलता के लिये यज्ञशाला का योनि के आकार का बनाया जाना अत्यन्त आवश्यक बतलाया है जो निर्लज्ज वाममार्गियों की लीला है। वैदिक धर्म के किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार की मूर्खता से भरी बातों का वर्णन नहीं। वाल्मीकि में अथर्ववेद के मन्त्रों के आधार पर कही हुई विधि के अनुसार यज्ञ करने का वर्णन है।

अथर्ववेद के वे मन्त्र ये हैं:—"यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा ते ध्रियतां गर्भोऽनुसूत, सवितवे स्वाहा।" (अथर्व० का० 6 सूक्त 17 मन्त्र 6) इसी प्रकार इस सूक्त के 7, 8, 9 मन्त्रों से आहुति देकर यज्ञ करना लिखा है और जिस मन्त्र में पुत्रोत्पत्ति की शक्ति है वह इस प्रकार से है:—

"शमीमश्वत्थम् आरुढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।

तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वाभरामसि॥

(अथर्व० का 6 सू० 11 मं० 1)

अर्थात् शम (जाण्ड, नीम्बर, या छोंकर) वृक्ष पर जो पीपल उगता है, वह पुत्र उत्पत्ति में अमोघ साधन है। वह हम स्त्रियों में भरते हैं (अर्थात् ऐसे पीपल की जड़, पत्ते छाल आदि से औषधि तैयार करके स्त्रियों को देनी चाहिये, उससे पुत्र की प्राप्ति अवश्यम्भावी है)

महर्षि शृष्य शृङ्ग ने 'अथर्व शिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रै: सिद्धां विधानत:' वाक्य में सिद्धा' शब्द का प्रयोग करके दशरथ को यह विश्वास दिलाया है कि "यह विधान मेरा अजमाया हुआ है इसमें पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी' और इस बात को सभी समझदार व्यक्ति मानते हैं कि उसी चिकित्सक, डाक्टर, हकीम या वैद्य से चिकित्सा कराई जाती है, जिसने पहले अनेक बार चिकित्सा की हुई हो! केवल पुस्तकों को रटने मात्र से कोई आयुर्वेद का ज्ञाता नहीं कहला सकता! परन्तु कृष्णदत्त ने जिस शृङ्ग ऋषि का वर्णन किया है वह तो इस काम में बिलकुल नया था, नया ही नहीं बल्कि भोला भाला अर्थात अनाड़ी !बुद्धिमान् लोग स्वयं विचारे कि राजा दशरथ और वसिष्ठ उसके मन्त्री एक ऐसे उर्जड्डु और जंगल से पकड़कर लाये हुये वनमानुष्य से पुत्रेष्टि जैसे महत्त्व पूर्ण यज्ञ को कैसे करा सकते थे? और वह भी स्त्रियों की योनियों के आकार की यज्ञ शाला बनाकर पुत्रेष्टि यज्ञ को सम्पन्न कराने वाले वामामार्गी के हाथ से!

मुझे उन आर्य समाजी कहलाने वालों पर शोक होता है कि जो महर्षि दयानन्द की लिखी हुई संस्कार विधि में गर्भाधन और पुंसवन संस्कारों में बतलाई हुई विधियों को तो देखते नहीं, जो अथर्ववेद के आधार पर ऋष्यशृङ्ग आदि ऋषियों की अजमाई हुई विधि है, जिसमें ऋष्यशृङ्ग आदि महान् विद्वानों के द्वारा बताई गई खीर (पायस) को सर्वोषधि' के द्वारा बनाना लिखा है जिससे उत्तम सन्तानों की प्राप्ति होती है ऋषि दयानन्द की लिखी इस विधि के अनुसार पटयाला के प्रसिद्ध वैद्य ध्वजा राम ने सैकड़ो नि:सन्तानों को सन्तान वाला बनाया था (देखिये संस्कार चन्द्रिका) और अब भी इस विधि अनुसार पुत्र की प्राप्ति अवश्य हो सकती है। परन्तु वाममार्गी कृष्णदत्त से पुत्रेष्टि यज्ञ के द्वारा पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा करते है! मुझे 'वैदिकानुसन्धान समिति' के संयोजक बतलायें कि आपके शृङ्गी ऋषि ने दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की कौनसी विधि बतलाई है?क्या राजा दशरथ की स्त्रियों को नग्न करने और उनकी योनियों के आधार की यज्ञ शाला और वेदी बनाकर उसमें आंख की समिधाओं के धुवें से उनकी योनियों के घाव भर जाने से पुत्रोत्पत्ति हो गई थी?

भगवान् राम और लक्ष्मण का चरित्र

भगवान् राम, लक्ष्मण और भरत आदि का चरित्र जितना उज्ज्वल और सर्वाङ्ग पूर्ण है इतना संसार के इतिहास में किसी संसारिक पुरुष का देखने को नहीं मिलता। किसी पाश्चात्य का कहना है:—

Well, may the Ramayana challenge the literature of every age and country to produce a poem that can boast of such perfect characters as a Rama or a Sita. Now here else are poetry and morlity so charmingly united each elevating the other, as in this realy holy poem.

वस्तुत: रामायण किसी युग और किसी देश के साहित्य को ललकार सकता है जो श्रीराम अथवा सीता के समान सर्वाङ्गीण चरित्रों या पात्रों पर गर्व कर सके। संसार के किसी भी ग्रन्थ में काव्य और नैतिकता का इतना सुन्दर सम्मिश्रण नहीं हुआ है जितना इस पवित्र काव्य में?

मानवों के सर्वोत्तम गुणों की तुलना करते हुये भगवान् राम को सर्वोत्कृष्ट मनुष्य कहा जा सकता है। वाल्मीकि जी ने भगवान् राम के सर्वोत्तम गुणों का जिस प्रकार से वर्णन किया है, उससे पता चलता कि सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति थे। संसार के किसी एक मनुष्य के अन्दर एक साथ इतने गुणों का होना असम्भव सा है इसी कारण से आर्य जनता ने उन्हें ईश्वर का अवतार कहना भी शुरु कर दिया। आर्य समाज भगवान् राम को ईश्वर का अवतार तो नहीं मानता, परन्तु मनुष्यों में उनको सब से ऊंचा स्थान देता है; वैदिक मर्यादाओं का सर्वाङ्गरूप से जहां क्रियात्मक रूप से पालन होता देखते हैं वह स्थल भगवान् राम के पारिवारिक जीवन में देखने को मिलता है या यह कहो कि भगवान् राम और उसके परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का पारस्परिक व्यवहार वैदिक शिक्षाओं का पूर्ण रूप है। इसलिये हजारों वर्ष से भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है इसके विपरीत रावण का चरित्र निकृष्टतम कोटि का रहा है; वाल्मीकि ऋषि ने उसके चरित्र का जो चित्रण किया है उससे पता चलता है कि रावण नीचता और पामरपन की पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ था। कोई भी पैशाचिक राक्षमी कर्म ऐसा नहीं जिसको हम रावण के चरित्र में न देखते हों? इस लिये हजारों वर्षों से आर्य लोगों के द्वारा जनता को धर्म मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये और पाप मार्ग से हटाने के लिये राम को धर्म प्रतीक और रावण को पाप का प्रतीक मानकर प्रतिवर्ष दशहरे के पर्व के अवसर पर उनका प्रदर्शन किया जाता रहा है। किन्तु कृष्णदत्त आर्य जनता को पथ भ्रष्ट करने के लिये अपने

प्रवचनों में राम, लक्ष्मण और सीता आदि के चरित्रों को भ्रष्ट और निकृष्ट दिखलाने का प्रयत्न करता है और रावण के चरित्र को उत्कृष्ट और धर्म मर्यादा का बान्धने वाला सिद्ध करना चाहता है।

वह अपने प्रवचन पुष्प २ के पृष्ठ ३६ से ४६ तक कहता है-

कुछ समय पश्चात् राम ने विभीषण से कहा हे विधात! मै एक वार्ता जानना चाहता हूँ। आप रावण के विधाता हैं। मैं रावण से संग्राम करने जा रहा हूँ क्या मैं उसे विजय पा सकूँगा उस समय उन्होंने कहा-हे विधाता! हे राम !! आप मेरी अनुमति लेते हैं। तो मेरी यह अनुमति है कि आप सात जन्म भी धरण करेगें तो भी रावण से विजय न पा सकोगे उस समय राम ने कहां—'यह क्या? क्यों विजय नहीं पा सकूँगा? क्या विशेषता है उसमें? उस समय विभीषण ने कहा—'हे राम! वास्तव में तो रावण के पुत्र नारायण आदि बड़े बलवान् हैं इसके अतिरिक्त रावण ही बड़ा ज्ञानी है और बलवान् है तथा वैज्ञानिक हैं। उसके पुत्रों में यही विशेषतायें हैं। राजा रावण का पुत्र नारायण बड़ा तत्त्व विज्ञानी है। उसने विज्ञान यन्त्रों की खोज की है वह तुम्हारा नाश कर देगा। इन सब को भी त्याग दिया जाये तो इसके पश्चात् रावण के गुरु शिव महाराज हैं। जो कैलाश पति हैं।.....ऐसा राजा जो रावण की सहयता करता है। उस राजा की विजय क्यों न होगी? हे राम! रावण के समक्ष चाहे कितने ही राजा आ जाओ तब भी आप रावण को संग्राम में विजय नहीं पा सकोगे। उस समय राम ने कहा तो हे विधाता! मुझे क्या करना चाहिये! मुझे तो विजय करनी ही है उन्होंने कहा हे भगवान्! आप अजयमेध यज्ञ कीजिये और यदि यज्ञ विधान पूर्वक किया गया तो आपकी विजय होगी। उस समय राम ने कहा अवश्य करूँगा। क्या शिव मुझ से प्रसन्न हो जायेंगे? उस समय बेटा! विभीषण ने कहा—"विधात! यदि आप अजयमेध यज्ञ करेंगे तो महान् आप सब की समक्ष में आ जायेगी आप अवश्य विजय पा जायेगें उस समय बेटा! राम ने विभीषण के आदेशानुसार वहाँ सब

सामग्री जुटाना आरम्भ कर दिया। जब सामग्री घृत आदि वहां एकत्रित होने लगी बुद्धिमानों को आमन्त्रित किया गया उस समय विभीषण ने कहा कि राम! यदि सब सामग्री भी जुट जाये परन्तु जब तक यज्ञ का ब्रह्मा रावण नहीं बनेगा तब तक आपका यज्ञ सफल नहीं होगा उस समय राम ने कहा विधाता! यह कैसे होगा? मेरे शत्रु मेरे समक्ष कैसे आयेंगे? उन्होंने कहा-देखो! रावण चारों वेदों का पण्ड़ित है यदि तुम निमन्त्रण देने जाओगे तो अवश्य आकर तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण करेगा। मुनिवरों! महर्षि वाल्मीकि जी ने ऐसा वर्णन किया है। कि विभीषण वहां से अपने स्थान पर आगये यहां सब सामग्री जुट जाने के पश्चात् बेटा राम और लक्ष्मण ने रावण को निमन्त्रण देने की योजना बनाई। दोनों वहां से बहते हुये रावण के द्वारा पर पहुचे, बेटा! रावण ने इससे पूर्व राम को कदापि नहीं देखा था। इसलिये बेटा! रावण को उसकी पहचान न हो सकी उस समय रावण अपने न्यायालय में विराजमान न्याय कर रहा था। उस समय के न्याय को पाकर राम ने लक्ष्मण से कहा, रावण तो बड़ा नीतिज्ञ है।

देखो कैसा सुन्दर न्याय कर रहा है। धन्य है विधाता को निमन्त्रण दे तो कैसे दें? उस समय वह वहाँ कुछ समय तक शान्त विराजमान होगये। न्यायालय में जब रावण का न्याय समाप्त हो गया तब वे उसके समक्ष पहुँचे।

राम के आमन्त्रण पर रावण का धर्माचरण—उस समय रावण ने कहा "कहिये भगवन् ! किस प्रकार बहते हुये आये हैं? क्या याचना है? उन्होंने कहा-'भगवन्! हम एक अजयमेध यज्ञ कर रहे हैं वेदों के अनुकूल आप हमारे यज्ञ को पूर्ण कीजिये? रावण ने कहा तथास्तु! जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वैसा ही किया जायेगा!' उस समय राम ने कहा-'समुद्र तट पर यज्ञ हो रहा है और हम आपको निमन्त्रित कर चले हैं। हे विधाता!हम कल नहीं आ सकेगें, तृतीय समय में आप स्वयं वहां

विराजमान होने का कष्ट करें! उस समय बेटा! रावण ने देखो! राम की याचना को स्वीकार कर लिया वहां से वे दोनों भ्राता बहते हुये समुद्रतट पर आपहूँचे मुनिवरो! अब हमने महर्षि वाल्मीकि के मुखार्बिन्दु से ऐसा सुना है और हमारे महर्षि लोमश मुनि महाराज ने ऐसा देखा भी है कि जब राम और लक्ष्मण दोनों अपने स्थान पर पहुँच गये तो वहां उन्होने यज्ञ की सब सामग्री घृतादि को एकत्रित किया और बड़ी सुन्दर यज्ञ शाला बनाई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मुनिवरो! ऐसा विदित होने लगा जैसे ब्रह्मलोक से ब्रह्मा आ पहुँचे हों। अब देखो! द्वितीय समय भी समाप्त हो गया। तृतीय समय आ पहुँचा। अब रावण की वहाँ प्रतीक्षा होंने लगी। कुछ समय पश्चात् बेटा! रावण भी अपने पुष्पक विमान में विद्यमान होकर के उस महान् भूमि पर आ पहुँचे, जहाँ रावण ने यज्ञ-शाला का निर्माण किया था। मुनिवरो! यह वहाँ आ पहुँचे तो उन दोनों विधाताओं ने उनका बड़ा स्वागत किया और बेटा! राम ने उन्हें अजयमेधयज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त कर दिया। "मुनिवरो! ब्रह्मा चुने के जाने पश्चात् जब वहाँ यज्ञोपवीत धारण किये जाने लगे उस समय रावण ने उन सब का परिचय लिया। उस समय उन्होंने कहा—"भगवन् ! हमें राम कहते हैं, हमें लक्ष्मण कहते हैं।" ज्रब उन्होंने अपना व्यक्तित्व उच्चारण किया तो रावण बड़े आश्चर्य में रह गया। अरे यह क्या हुआ यह तो बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हुआ। उस समय उन्होंने कहा—धन्यवाद! अहो तुम्हारी धर्म पत्नी कहाँ है? "उस समय कहा—विधाता! मेरी धर्म पत्नी तो आपके गृह लंका में है।" उस समय मुनिवरो! रावण ने कहा अरे! मैंने यज्ञ को विधान से नहीं किया तो मैं देवताओं का महापापी बन जाऊँगा! मुझे 'अजयमेध' यज्ञ करने के लिये इन्होंने ब्रह्मा बनाया है। मुझे परमात्मा ने बुद्धि दी है। मेरा कर्त्तव्य केवल एक ही है मैं सीता को लाऊँ और यज्ञ को विधान से पूर्ण करूँ।"

महर्षि बाल्मीकि जी ने ऐसा कहा है कि वहाँ अपने पुष्पक विमान में विद्यमान होकर लंका में सीता के द्वार पर जा पहुँचे और सीता से कहा—"हे सीते! स्वामी यज्ञ रच रहा है समुद्र पर चलो!"

उस समय सीता ने कहा—हे रावण आप नित्यप्रति मिथ्या ही उच्चारण किया करते हो!" नहीं-नहीं! सीते! मुझे तेरे स्वामी ने उस यज्ञ का ब्रह्मा चुना है।" सीता ने जब इस आदेश को पाया तो प्रसन्न हो गई। और महान्! उसके पुष्पक विमान पर विद्यमान हो उस स्थान पर जा पहुँची जहाँ विशाल 'अजयमेध यज्ञ' करने का विधान बनाया गया था। वहाँ जाकर बड़े आनन्द से सीता राम के दक्षिण भाग में विद्यमान हो गई और रावण अपने विभाग में यज्ञ का ब्रह्मा बन गया। इसके पश्चात् यज्ञ आरम्भ होने लगा। मुनिवरो! जब तक विधान से ऋत्विज् नहीं चुने जाएँगे चाहे कैसा भी यज्ञ हो वह लाभदायक नहीं होगा।' वहाँ आनन्दपूर्वक ऋत्विज् चुने गये। वहाँ देखो अध्वर्यु आदि भी चुने गये। यज्ञोपवीत धारण किये और यज्ञ आरम्भ होनें लगा। तो मुनिवरो! हमने ऐसा सुना है कि महर्षि बाल्मीकि के अनुसार तथा लोमश के निर्णय अनुसार जिन्होंने यज्ञ देखा था कि यह यज्ञ इसी प्रकार चलता रहा। मुनिवरो! जिस समय यज्ञकी पूर्णाहुति होने वाली थी उस समय सीता ने राम से कहा-हे राम! आपके पास कुछ दक्षिणा भी है या नहीं ? तब राम ने सीता से कहा—"हे सीते मेरे पास क्या है? मैं उन्हें क्या दक्षिणा दूँ?" सीता ने कहा—विधाता! यह तो बड़ा द्रव्यपति राजा है। इसके यहाँ तो स्वर्ण तक के गृह हैं। मणियों तक के ढेर लगे रहते हैं तो यह कार्य कैसे सम्पूर्ण होगा!" तो मैं क्या करूं? तो उस समय बेटा! देखो! सीता ने क्या किया? उसके पास एक कोड़ी जुड़ा था वह उसने राम को दिया और कहा—"लीजिये महाराज! आप ब्रह्मा (रावण) का स्वागत इससे कीजिये।" देखो बेटा! सीता का यह कोड़ी जूड़ा राम ने स्वीकार

कर लिया। अब मुनिवरो देखो! यज्ञ चलता रहा। पूर्णाहुति होने के पश्चात् वहाँ बेटा! यथाशक्ति स्वागत होने लगा। राम और सीता दोनों उस कौड़ी जूड़े को लेकर रावण के समक्ष जा पहुँचे। रावण ने कहा—'हे राम! मुझे विदित होता है जैसे यह कौड़ी जूड़ा सीता का है। उस समय सीता ने कहा—विधाता! यह कौड़ी जूड़ा मेरा क्या है? यह तो शुभ कार्य है। यह तो मेरे पिता दशरथ ने किसी समय मेरे लिये आभूषण बनवाया था। आज यह आप के इस शुभ कार्य में आ गया! उस समय राजा रावण ने कहा हे सीते! मुझे तुम्हारी यह दक्षिणा स्वीकार है। परन्तु मैं किसी के शृङ्गार को भ्रष्ट करना नहीं चाहता।''

' अब मुनिवरो! रावण ने यह वाक्य कहा तो प्रजा सन्न रह गई और कहा 'अरे रावण तो बड़ा बुद्धिमान् है।' उस समय बेटा! वहाँ यज्ञ सम्पर्ण हो गया। पूर्ण होने के पश्चात् रावण ने कहा था—'हे राम तुम्हारी मनोकामनायें अवश्य पूर्ण होगी!' आशीर्वाद देकर सीता से कहा—हे सीते यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नहीं तो मेरी लंका को चलो!'

धर्म और यज्ञ का फलदायी माहात्म्य—उस समय सीता नें कहा—हे विधाता! आज से तो तुम मेरे पिता ब्रह्मा बन गये हो। मुझे तो यहाँ भी ऐसा और वहाँ भी ऐसा! भगवन् मैं आपके साथ चलूँगी' मुनिवरो! इसका नाम धर्म है। राम ने भी यह नहीं कहा की सीते तू कहां जाती है। तब वह बेटा! रावण के साथ पुष्पक विमान में विद्यमान हो गई। रावण ने उस समय ऋग्वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुये सीता से कहा या—'हे सीते! आज मुझे विदित होता है कि अब मेरे विनाश का समय आ गया है, मेरी लंका नष्ट-भ्रष्ट होने वाली है।'

सीता ने कहा—हे विधाता ! आप इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं? उन्होंने कहा—'हे सीते ! मेरी जो प्रजा है वह समाप्त होने वाली है...

आज मुझे विदित होता है कि मुझे यह यज्ञ पूर्ण नहीं करना था। यज्ञ पूर्ण होने से मुझे विदित हो गया कि मेरी लंका में एक भी मानव नहीं बचेगा।''

कृष्णदत्त के प्रवचन को अविकल रूप से मैंने इसलिए लिख दिया कि सुविज्ञ पाठक वाल्मीकीय और तुलसीकृत रामायणों के साथ इस प्रवचन का मिलान करके स्वयं देख सकें कि कृष्णदत्त का यह प्रवचन वाल्मीकीय आदि रामायणों के अनुकूल है या विरुद्ध? क्योंकि कृष्णदत्त ने अपने इस प्रवचन में चार बार महर्षि वाल्मीकि का नाम लेकर यह कहा है—'महर्षि वाल्मीकि ने ऐसा कहा है। इससे पाठकों को अच्छी तरह से विदित हो जायेगा कि कृष्णदत्त अत्यन्त झूठा और षड्यन्त्र कारी व्यक्ति है जिसने महर्षि वाल्मीकि जैसे शुद्ध और पवित्र आत्माओं का नाम लेकर सीधी साधी और भोली भाली जनता को धोखा देने के लिये अत्यन्त घृणित झूठ बोला है।

प्रश्न—श्रीमान् जी ! हमने भी कृष्णदत्त के उपर्युक्त प्रवचन को सुना है और उसकी पुस्तक को भी पढ़ा है। परन्तु हमने वाल्मीकीय रामायण को नहीं पढ़ा। कृपया आप बताइये कि कृष्णदत्त के प्रवचन में कौन-कौन सी बातें वाल्मीकीय रामायण के विरुद्ध हैं?

उत्तर—अब वाल्मिकीय रामायण की बात सुनिये कृष्णदत्त ने रामायण के उस प्रसङ्ग को लेकर यह प्रवचन किया जिसमें राम अपनी वानर सेना को लेकर समुद्र के उत्तरी तट पर पहुँच गया और उधर विभीषण रावण से अपमानित होकर राम के साथ समुद्र तट पर ही आ मिला था। यह प्रसंग वाल्मिकी रामायण के युद्ध काण्ड के 19वें सर्ग में आता है। वहाँ विभीषण ने अपने चार मन्त्रियों सहित श्रीराम के चरणों में गिरकर निवेदन किया 'राजन् मैं रावण का छोटा भाई हूँ और उसके द्वारा अपमानित हूँ। आप दु:खी प्राणियों के आश्रय हैं अत: मैं आपकी

शरण में आया हूँ। मैंने लंकापुरी और समस्त धनसम्पत्ति को तिलाञ्जली दे दी है। अब तो मेरा राजपाट, जीवन, सुखादि सब आपके आधीन है। विभीषण के इन वचनों को सुनकर राम ने कहा—

आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम्।'' अर्थात् हे विभीषण! तुम मुझे लंकावासी राक्षसों के बलाबल का ठीक-ठीक वृतान्त सुनाओ।' राम ने यह नहीं पूछा कि मेरी विजय कैसे होगी? राम के यह पूछने पर विभीषण ने रावण की वीरता का तथा रावण के भाई कुम्भकरण का तथा रावण के पुत्र इन्द्रजीत की वीरता का वर्णन किया और उसके सेनापतियों की शूरवीरता का भी वर्णन किया, परन्तु रावण और रावण के पुत्र नारायण की वैज्ञानिकता का कहीं वर्णन नहीं किया। राम ने विभीषण की बातों को सुनकर उन पर मन ही मन में विचार करके कहा-

''अहँ हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सबान्धवम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेव ब्रवीमि ते।।
रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः।
पितामह सकाशं वा न मे जीवन् विमोक्षसे।।
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रसबान्धवम्।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तै र्भ्रातृभिः शपे।।

मैं रावण को उसके बान्धवों सहित और प्रहस्त (रावण के सेनापति को मारकर तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा, मैं तुम्हें यह सत्य कहता हूँ। वह रावण चाहे रसातल में पहुँच जाये या पाताल में पहुँच जाये। या ब्रह्मा के पास ही क्यों न चला जाये वह मेरे से जिन्दा बच नहीं सकता। मैं संग्राम में रावण को उसके बन्धुओं और पुत्रों सहित मारे बिना अयोध्या में प्रवेश नहीं कर करूँगा! मैं अपने तीनों भाईयों की शपथ खाकर यह कह रहा हूँ।

https://t.me/AryavartPustakalay

विभीषण ने राम के इन वचनों को सुनकर उस कल्याणकारी राम के चरणों में अपने सिर को झुका दिया और कहा हे राजन ! रावण की आक्रमण कारी सेना के आते ही मैं उसमें घुसकर राक्षस सैनिकों का वध करने और लंका विध्वंस करने में आपकी प्राण पण से सहायता करूँगा, विभीषण के ऐसा कहने पर राम ने विभीषण को प्रेम से छाती से लगा लिया और फिर प्रसन्न होकर लक्ष्मण से कहा हे मानदाता लक्ष्मण! जाओ समुद्र से जल ले आओ और उससे महामति विभीषण को तुरन्त राक्षसों का राजा बनाने के लिये उसका अभिषेक कर दो। रावण पर विजय पाने के लिये वाल्मीकीय रामायण के युद्ध काण्ड के पहले सर्ग से लेकर 35वें सर्ग तक युद्ध की तैयारी का विस्तृत वर्णन किया गया है।

परन्तु इस लालभुजक्कड कृष्णदत्त के 'अजयमेध यज्ञ' के कपोल कल्पित प्रवचन का संकेत तक नहीं। और इसका वर्णन उसमें हो भी कैसे सकता था? क्योंकि विभीषण वेदों का विद्वान् और सच्चा तेजस्वी वीर पुरुष था और राम वेद वेदाँग का पूर्ण ज्ञाता तो था ही वह क्षत्रियों में शिरोमणि सूर्य वंशिकों में भी शिरोमणि अत्यन्त तेजस्वी मर्यादा पुरुषोत्तम महापुरुष था। उसका जन्म उस प्रसिद्ध वंश में हुआ था जिसने लाखों वर्षों तक सारे भूमण्डल के चक्रवर्ती साम्राज्य का उपभोग किया था। वह जानता था कि शत्रु के ऊपर विजय किस प्रकार से प्राप्त की जा सकती है? वह यह भी जानता था कि चारों वेदों के मन्त्रों के द्वारा सैकड़ों मन घी और सामग्री की आहुतियाँ देने से वायु जलादि शुद्धि होकर संसार में सुख फैल सकता है, परन्तु वेद मन्त्रों के द्वारा आहुति देने से शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती! इसलिये न तो विभीषण राम को ऐसी सम्मति दे सकता था कि रावण पर विजय प्राप्ति के लिये अजयमेध करो और न श्रीराम इस प्रकार की नि:सार सम्मति को

स्वीकार कर सकता था। राम ने वेद वेदाँगों को अच्छी प्रकार से पढ़ा था, उसने शत्रु पर विजय पाने के लिये ऋग्वेद की इस शिक्षा को हृदयंगम किया हुआ था—

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कभे।

युष्माक्मस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो! शत्रुओं को जीतने के लिए और उसको रोकने के लिए तुम्हारे आयुध अर्थात् आग्नेयास्त्रादि, शस्त्र, तोप बन्दूक वाण और तलवार आदि प्रशंसित और दृढ़ हों। तुम्हारी सेना मायावी राक्षसी सेना से अधिक शिक्षित सुगठित और प्रशंसित शूरवीर और दृढ़ हो तभी शत्रु पर विजय प्राप्त हो सकती है।" भगवान् राम ने तो वाल्यावस्था में ही अस्त्रशस्त्रविद्या में निपुणता प्राप्त कर ली थी और इसीलिये राम की प्रसिद्धि सुनकर विश्वामित्र ऋषि अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को अपने सिद्धाश्रम में ले गये थे। विश्वामित्र ने वहाँ भी श्री राम को लगभग 50 प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों की शिक्षा दी और अपने सारे शस्त्रास्त्र भण्डार को श्रीराम के हवाले कर दिया। जिस समय श्रीराम दण्डकारण्य में गये उस समय महर्षि अगस्त्य ने भी उनको ऐसे दुर्लभ और अनोखे अस्त्र दिये जिनका किसी और को पता नहीं था इन शस्त्रास्त्रों को सीख कर और उनके अक्षय भण्डार को पाकर राम संसार का अजेय और अद्वितीय योद्धा बनाया था। इसी आधार पर उन्होंने विभीषण को विश्वास दिलाया था कि मैं रावण को बन्धु बान्धवों सहित मार कर तुम्हें लंका का राजा बनाऊंगा। राम ने अपनी विजय को निश्चित करने के लिये वानरों की वीरवाहिनी सेना तैयार कर ली थी जिसका अध्यक्ष सुग्रीव को बनाया गया था जिसकी सहायता के लिये हनुमान, अङ्गद, नल नील, सुषेण, जामवन्त, ऋषभ, गन्धमादन, और दीर्घ दर्शी आदि महायोद्धाओं के नेतृत्व में लाखों वीर योद्धाओं की अपार

वीर वाहनी थी। फिर राम जैसे तेजस्वी वीर को विभीषण से विजय के उपाय पूछने की क्या आवश्यकता थी?

कृष्णदत्त ने श्रीराम के गौरव को मिटाने के लिए और रावण की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये राम के मुख से हीजड़ों और भिखमंगों जैसी बातें कहलवाई हैं। और विभीषण जैसे अज्ञानी और धर्मात्मा पुरुष के मुख से रावण जैसे चोर, पामर, कामी और दुष्ट व्यक्ति को अजयमेधयज्ञ का ब्रह्मा बनाने की राम को सम्मति दिलवाई है? इस प्रवचन से कृष्णदत्त के हृदय की कालिमा ही प्रकट होती है। जो राम जैसे सर्वश्रेष्ठ और स्वाभिमानी क्षत्रिय वीर को रावण जैसे लम्पट और दुराचारी के पास इसलिए भेजने की बात कहता है कि वह रावण से अपने यज्ञ का ब्रह्मा बनाने की प्रार्थना करे !

प्रश्न—क्या रावण को राम के यज्ञ का ब्रह्मा बनाने में कोई बुराई थी?

उत्तर—हाँ ! रावण को यज्ञ का ब्रह्मा बनाने में एक नहीं अनेक बुराइयाँ थीं। एक सबसे बड़ी बुराई तो यही थी कि राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम को विश्वासघाती और कृतघ्न बनना पड़ता और साथ ही ब्रह्म हत्या जैसे महापाप का भागी बनना पड़ता। श्रीराम जैसे धर्मात्मा पुरुष के पवित्र हृदय में दो परस्पर विरुद्ध बातें कभी भी नहीं ठहर सकती थी। एक तो यज्ञ जैसे पवित्र कर्म के लिए रावण को ब्रह्मत्व जैसे सर्वोच्च स्थान का देना और दूसरी हृदय में यह कामना रखनी कि इस यज्ञ से रावण का सर्वस्व नष्ट हो जाये। इस प्रकार की कल्पना किसी पागल और साक्षसी वृत्ति वाले व्यक्ति की हो सकती है। राम जैसे महापुरुष की नहीं। दूसरा दोष रावण को ब्रह्मा बनाने में यह था कि ऐसा करने से वैदिक वर्ण व्यवस्था भंग होती थी क्योंकि यज्ञ कराना ब्राह्मण का कर्म है। इतर वर्णस्थ का नहीं। रावण स्वभाव से राक्षस था और कर्म से

https://t.me/AryavartPustakalay

क्षत्रिय था। राम ने स्वयं रावण को क्षत्रिय ही माना है। जिस समय रावण की मृत्यु हो गई उसके पश्चात् विभीषण के विलाप करने पर राम ने उसको सान्त्वना देते हुए कहा था—

"नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्ममवस्थिताः।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे॥
इयं हि पूर्वैः सन्दिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः। वा०यु०

अर्थ—'जो लोग क्षात्रधर्म में स्थित रहते हुए अपनी विजय की आकांक्षा रखते हुए समर भूमि में प्राण त्यागते हैं—वे साधारण जनों की भान्ति शोक करने के योग्य नहीं होते। क्षत्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की गति का आदेश मनु आदि पूर्व पुरुषों ने भी किया है कि रणभूमि में मारे हुए क्षत्रिय के लिये शोक नहीं करना चाहिए, यह निश्चित सिद्धान्त है।" जब स्वयं राम रावण को क्षत्रिय मानता था तो वह वैदिक मर्यादा को तोड़कर एक क्षत्रिय को यज्ञ का ब्रह्मा कैसे बना सकता था?

तीसरी बुराई रावण के ब्रह्मा बनाने में यह थी कि रावण एक अत्यन्त दुराचारी, चोरी से दूसरों की स्त्रियों का अपहरण करने वाला, मांसाहारी, शराब पीने वाला, यहाँ तक कि मनुष्यों को मारकर उनके माँस को खाने में भी उसे कोई संकोच नहीं था। ऐसे दुराचारी मनुष्य को यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम कर्म का ब्रह्मा बनाने की सम्मति विभीषण राम को कैसे दे सकता था और श्री राम ऐसी धर्म विरुद्ध सम्मति को कैसे मान सकता था?

हनुमान् जब सीता की खोज के लिये लंका में गया था और खोजते खोजते जब प्रातःकाल अशोक वाटिका में गया जहाँ सीता को राक्षसियों की कैद में रक्खा गया था वहाँ उसी समय रावण ने राक्षसियों के साथ आकर सीता के साथ जो अत्यन्त क्रूर और निर्लज्जता का दुर्व्यवहार

किया था उस सब को हनुमान् ने अपनी आँखों से देखा था और कानों से सुना था। उस समय रावण सीता को यह धमकी देकर चला गया था—हे सुन्दरी! मैंने तुम्हारे लिये जो अवधि निश्चित की थी उसमें अभी दो मास शेष हैं। अत: मुझे दो मास प्रतीक्षा करनी है। दो मास की अवधि बीतने पर तुझे मेरी शय्या पर आना होगा। और—

"द्वाभ्यां तु मासाभ्यां भर्त्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डश:॥

अर्थ—यदि दो मास की अवधि बीतने पर भी तूने मुझे स्वीकार नहीं किया तो मेरे पाचक मेरे प्रातराश (प्रात:काल के भोजन) के लिए तेरे टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे।' रावण के चले जाने पर हनुमान् ने सीता को राम की दी हुई अंगूठी दी और सीता को रामादि का सब वृतान्त सुनाया और सीता ने भी अपने अपहरण की सारी कथा सुनाई। हनुमान् ने किष्किन्धा में जाकर राम और लक्ष्मण आदि को सारी कथा सुनाई। पाठक स्वयं विचार करें कि राम जैसे मनस्वी और स्वाभिमानी वीर रावण के इन सब दुष्टाचरणों को जानते हुए उसको यज्ञ का ब्रह्मा बनाना कैसे स्वीकार कर सकते थे? और रावण को निमन्त्रण देने के लिए लंका में कैसे जा सकते थे? इसके अतिरिक्त बात यह भी है कि श्रीराम ने बन जाते हुए यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं 14 वर्ष तक वन में ही रहूँगा और इस अवधि में किसी ग्राम और नगर में नहीं जाऊँगा।

राम की प्रतिज्ञा—सुग्रीव के राज्याभिषेक के लिये हनुमान् ने राम से प्रार्थना की कि आप कृपा करके किष्किन्धा पुरी में चलिये और सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दीजिये ! राम ने उत्तर दिया—

चतुर्दश समा: सोम्य ग्रामं यदि वा पुरम्।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निदेश पालक:॥

https://t.me/AryavartPustakalay

अर्थ—हे हनुमान् मैं पिता के आदेश का पालन करते हुए 14 वर्ष तक ग्राम में या नगर में प्रवेश नहीं करूँगा।' रावण के मरने पर विभीषण के राज्याभिषेक के लिए भी श्रीराम जी लंकापुरी में नहीं गये बल्कि उन्होंने राज्याभिषेक कराने के लिए लक्ष्मण को लंकापुरी में भेजा।

"विभीषणमिमं सोम्य लंकायामभिषेचय।

अनुरक्तं च भक्तं मम चैवोपकारिणम्॥"

अर्थ—हे सोम्य ! यह विभीषण मेरा बड़ा प्रेमी और भक्त है। इसने मेरा उपकार किया है इसलिए तुम लंका में जाकर इसका राज्याभिषेक कर दो।" इन दो प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है कि राम अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए सदा सतर्क रहते थे। इसी कारण से राम का अजयमेध के लिए रावण को ब्रह्मा बनाने हेतु लंकापुरी में प्रवेश करना कृष्णदत्त की कपोल कल्पना है। एक बात और है जिससे यह सिद्ध होता है कि राम ने 'राम रावण' युद्ध से पहले रावण को कभी नहीं देखा था। वह यह है कि जब रावण अपनी प्रचण्ड सेना को लेकर राम से युद्ध करने के लिए युद्ध क्षेत्र में आया तो राम ने विभीषण से पूछा कि—'यह निडर एवं अचल सेना किसकी है? तो श्रीराम के इन वचनों को सुनकर इन्द्र के समान पराक्रमी विभीषण, उन महाधैर्यवान् राक्षस श्रेष्ठों की सेना का परिचय देते हुए कहने लगे—

जो मुकुट धारण किये हुए है तथा जिसका मुखमण्डल चमचमाते हुए कुण्डलों से अलंकृत है, जिसका शरीर हिमालय अथवा विंध्याचल की भान्ति भयंकर है, जो इन्द्र तथा यम के दर्प का भी दलनकारी है, जो सूर्य की भान्ति देदीप्यमान हो रहा है—यही राक्षसों का राजा रावण है।" विभीषण के ये वचन सुनकर राम ने रावण को देखा और कहा

'अहो दीप्यते महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।'

अर्थ—'वाह ! सचमुच राक्षस राज रावण अत्यन्त कान्तिमान् और महान् प्रतापी है।' दिष्ट्याऽयमद्यपापात्मा ममदृष्टि पथं गतः।।

अर्थात्—'मेरे सौभाग्य से यह दुष्टात्मा आज मेरे सम्मुख आया है। अतः आज मैं सीता हरण का क्रोध इस पर निकालूँगा।'

इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि युद्ध से पहले न तो राम ने रावण को देखा था और न रावण ने राम को! अतः कृष्णदत्त का यह कहना सर्वथा झूठ और शरारत से भरा है कि राम रावण को यज्ञ का निमन्त्रण देने लंकापुरी में गया था और रावण राम के निमन्त्रण पर सीता सहित समुद्र तट पर 'अजयमेध' यज्ञ कराने गया था।' अतः सुविज्ञ पाठकों को ऐसे शरारती आदमी पर धिक्कार भेजनी चाहिए जो राम लक्ष्मण और सीता के विमल यश पर बट्टा लगाने की धृष्टता करता है।

कृष्णदत्त का यह प्रवचन ऐसा ही है जैसे एक बूढ़ा खोसट जुलाहा अपनी खड्डी पर बैठकर अपने बेटे पौते पौतियों को भूत प्रेतों की अनोखी और सुनी सुनाई कहानियाँ सुनाया करता। कृष्णदत्त की कहानी वाल्मीकीय रामायण के इतिहास के विरुद्ध तो है ही, परन्तु इसमें औचित्य और अनौचित्य, सम्भव और असम्भव का भी ध्यान नहीं रक्खा गया। सदाचार और वैदिक मर्यादाओं को सर्वथा तिलाञ्जलि दे दी गई है। क्षत्रियों की अपनी पत्नियों के सम्बन्ध में क्या भावनाएँ होती हैं इस पर तनिक भी विचार नहीं किया गया। पतिव्रता क्षत्राणियों का पर पुरुषों के साथ कैसा व्यवहार होता है? इसको न जानकर सीता का व्यवहार एक स्वेच्छाचारिणी स्वैरिणी के सदृश दिखलाया है। कृष्णदत्त के सलाहकारों ने भी यह नहीं सुझाया कि तुम ये ऊलजलूल बातें क्यों किया करते हो? जब वानरों की सेना पूरे दलबल के साथ लंका पर आक्रमण करने के लिये समुद्रतट पर पहुँच चुकी थी और रावण के गुप्तचर 'शार्दूल' और 'शुक' ने रावण को सारी स्थिति से अवगत करा

दिया था, और इसलिए रावण ने अपनी लंका की रक्षा के लिए सब प्रकार के प्रबन्ध कर लिये थे। लंका नगरी पहले ही से चारों ओर से ऊँची ऊँची और सुदृढ़ दीवारों से घिरी हुई थी जिन पर हर प्रकार के अस्त्र शस्त्र रक्खे हुए थे जिनको चलाने के लिए बड़े बड़े योद्धा हर समय तैयार रहते थे। चारदीवारी के बाहर चारों ओर गहरी और चौड़ी खाइयाँ पानी से भरी रहती थी जिनमें भयंकर मगरमच्छ आदि जलजन्तु घूमते थे। चारों फाटकों की रक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र धारी सैनिक हर समय सतर्कता के साथ पहरा दे रहे थे। नगर के बाहर भी जासूसों का जाल बिछा हुआ थां यह सारा वर्णन हनुमान् जी ने श्री राम जी को किष्किन्धा में ही बतला दिया था। जिसका वर्णन महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायण के युद्ध काण्ड के पहले सर्ग में किया है। ऐसी अवस्था में राम और लक्ष्मण बिना दूसरे की सहायता से और बिना किसी अड़चन के लंका नगरी के बीचों बीच रावण के न्यायालय के सामने जाकर खड़े हो गये और वहाँ भी किसी पहरेदार ने उन्हें नहीं टोका ! इस जादू जैसे चमत्कार पर विश्वास अनपढ़ अन्धविश्वासी या स्वार्थ से अन्धे हुये "वैदिक अनुसन्धान समिति' के संचालक ही कर सकते हैं।

नि:स्वार्थ और सत्यान्वेषी बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी झूठी बातों पर कभी विश्वास नहीं कर सकते! इससे अधिक विचित्र बात यह है कि जब रावण राम से मिला तो रावण ने राम से केवल इतना पूछा कि 'कहिये भगवन् कैसे बहते हुए आ गये' मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी जब किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलता है तो वह उस व्यक्ति का नाम, धाम और व्यवसाय पूछता है, फिर उसके साथ दूसरी बातें करता है! परन्तु रावण जो एक अनुभवी राजा था राजनीति में निपुण था, उसने राम और लक्ष्मण को जो रावण के लिये सर्वथा नये व्यक्ति थे, जिनका रंग रूप वेश भूषा और चेष्टाएं लंका वासी राक्षसों से सर्वथा भिन्न थीं उनका

नामधाम और कामकाज कुछ भी नहीं पूछा और यह भी नहीं पूछा कि वे अजयमेध यज्ञ क्यों कर रहे थे? किस पर विजय पाने के लिये यह दौड़ धूप थी? राम के यह कहने पर कि हम 'समुद्र तट पर अजयमेध' यज्ञ कर रहे हैं, हमने उसके लिये आपको ब्रह्मा चुना है और आप कल तीसरे पहर वहाँ आ जावें, हम कल आपके पास नहीं आ सकेंगे' कहते हैं रावण ने झट इसके लिये स्वीकृति दे दी और अगले दिन तीसरे पहर पुष्पक विमान पर बैठकर समुद्र तट पर पहुँच गये। कृष्णदत्त ने इस प्रवचन में 'राम और रावण' इन दोनों को तो महा मूर्ख बनाने का दुष्प्रयत्न किया ही है।

यद्यपि उनके लिये यह कार्य असम्भव है परन्तु बहुत से आर्य समाजियों को पागल और महामूर्ख बनाने में कृष्णदत्त अवश्य सफल हो गया है!

कृष्णदत्त विभीषण के मुख से कहाता है—'देखो ! रावण चारों वेदों का पण्डित है... रावण स्वयं बड़ा ज्ञानी है वह बड़ा बलवान् और वैज्ञानिक है।

कृष्णदत्त का यह कहना विभीषण के ऊपर अत्याचार है, क्योंकि विभीषण स्वयं जानता था कि रावण अत्यन्त क्रोधी, दुष्टाचारी, अभिमानी हठी, छली, कपटी, परस्त्रीगामी और चोर है। भला ऐसे दुष्कर्मी के पास जाने के लिये विभीषण राम को सम्मति कैसे दे सकता था? और राम के सामने वह रावण की प्रशंसा कैसे कर सकता था? विभीषण को तो रावण से इतनी घृणा हो चुकी थी कि जब राम रावण युद्ध में राम के हाथ से रावण मारा गया तो राम ने विभीषण को अन्त्येष्टि संस्कार करने के लिये कहा तो विभीषण ने कहा था—

"त्यक्त धर्मव्रतं क्रूरं नृसमनृतं तथा।

नाहमर्हामि संस्कर्तु परदाराभिमर्शिनम् ॥

भ्रातृ रूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहितेरतः।

रावणो नार्हतिपूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ॥

वा० यु० स० 111 श्लोक 93–95

अर्थ—हे राम जिस रावण ने धर्म को छोड़ा हुआ है, जो अत्यन्त निर्दयी है। मनुष्यों का घातक है और झूठा है। मैं ऐसे परस्त्री के साथ बलात्कार करने वाले का संस्कार नहीं कर सकता! भाई के रूप में वह मेरा शत्रु है। मेरे बड़े भाई होने के नाते यद्यपि वह मेरे लिये पूजनीय है परन्तु ऐसे दुष्ट व्यक्ति की जो सब को दुःख देता है। पूजा नहीं करनी चाहिये। पाठक गण ! जरा विचार कीजिये ! कि जब स्वयं अपने बड़े भाई के दाह संस्कार करने में भी विभीषण इसलिये संकोच करता है कि ऐसे पापी का दाह संस्कार करने से पाप लगता हैं। तो ऐसे अधर्मी और दुराचारी को यज्ञ का ब्रह्मा बनाने की सम्मति विभीषण कैसे दे सकता था? और राम जैसा स्वाभिमानी वीरशिरोमणि क्षत्रिय जिसकी दण्डकारण्य निवासी ऋषियों के सामने यही प्रतिज्ञा थी कि मैं दुष्टाचारी और पापी राक्षसों को यहाँ से मिटा डालूंगा क्या वही रावण जैसे राक्षस राज को यज्ञ का ब्रह्मा बनाने की बात सोच भी सकता था यह सब कृष्णदत्त की शरारत है जो रावण जैसे पापी को चारों वेदों का पण्डित, ज्ञानी, आदित्य ब्रह्मचारी कहकर आर्यों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता है। और राम की प्रतिष्ठा को आर्य हिन्दुओं से गिराना चाहता है मैंने वाल्मीकीय रामायण को कई बार आद्योपान्त पढ़ा है परन्तु कहीं भी उसमें रावण को चारों वेदों का पण्डित नहीं कहा। केवल एक स्थान पर रावण के मन्त्री सुपार्श्व ने रावण के द्वारा सीता के वध को रोकने के लिये रावण की प्रशंसा करते हुए इतना कहा था कि—

"वेदविद्या व्रतस्नातः स्वकर्म निरतः सदा।

स्त्रिया कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वरः॥ वा० युद्धकाण्ड

अर्थ—हे राक्षस राज ! आपने यथा विधि वेद का अध्ययन किया है तथा आप अपने क्षात्र धर्म में सदा तत्पर रहते हो, फिर हे वीर आप स्त्री-वध को कैसे उचित समझते हैं?'' रावण के मन्त्री के कथन से भी यही सिद्ध होता है। कि यद्यपि रावण ने कुछ वेद का अध्ययन तो किया था, किन्तु वह चारों वेदों का पण्डित नहीं था और न वह ब्राह्मण था बल्कि वह क्षत्रिय था और इसीलिये वह यज्ञ का ब्रह्मा बनने का अधिकारी नहीं था।

जिस राम ने लंका को जीतने के पश्चात् विशाल जनता के सामने सीता की कठोर अग्नि परीक्षा के बिना छुआ तक नहीं बल्कि कठोर शब्दों में कहा—

प्राप्त चारित्र सन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता।

दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा।। वा० युद्धकाड

अर्थ—हे सीते मुझे तुम्हारे चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो गया है अत: तुम मेरे सामने खड़ी हुई मेरे लिये उसी प्रकार असह्य हो जिस प्रकार नेत्र रोग से पीड़ित मनुष्य को सामने रखा हुआ दीपक असह्य जान पड़ता है।

''**क: पुमान् कुले ज्ञात: स्त्रियं पर गृहोषिताम् ।**

तेजस्वी पुरादद्यात् सुहृल्लेखेन चेतसा।

अर्थ—हे सीते ! ऐसा कौन तेजस्वी पुरुष होगा जो उच्च कुल में उत्पन्न होकर दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को सुहृद समझकर (अपनी समझकर) फिर स्वीकार कर लेगा। रावण की गोद में बैठने के कारण भ्रष्ट और उसकी कुदृष्टि से देखी हुई तुमको इतने बड़े कुल में उत्पन्न होकर मैं भला किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूँ?'' वा० युद्ध काण्ड सर्ग 115। श्लो० 17, 19, 20

राम के ऐसा कहने पर सीता ने अग्नि परीक्षा दी और वहाँ उपस्थित सभी महापुरुषों ने सीता के निर्दोष होने की साक्षी दी। तब राम की सन्तुष्टि हुई और उन्होंने सीता को पत्नी रूप में स्वीकार किया।

जिस सीता को राम ने बिना अग्नि परीक्षा और श्रेष्ठ पुरुषों की साक्षी के स्वीकार नहीं किया उसी सीता को रावण के साथ पुष्पक विमान से उतरते ही राम ने यज्ञ जैसे पवित्र कर्म में पत्नी रूप से अपनी दाहिनी ओर कैसे बैठा लिया? इस बात को कोई बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं मान सकता ! कृष्णदत्त को ऐसे ऐसे पतित लोगों से पाला पड़ा है जिनकी स्त्रियाँ स्वच्छन्द घूमती हैं और उनके पति भडवे की तरह टुक-टुक दीदम दमन कशीदम्' टुक-टुक देखते रहते हैं और दम नहीं मारते। उसको स्वाभिमानी और मनस्वी वीर और वीराङ्गनाओं के चरित्रों का क्या पता? इसी भूल में पड़कर वह सीता से भी रावण को दक्षिणा रूप में अपने सिर का कोड़ीजूहा (सिर का सिंगार) राम के हाथ से दिलवाता है। यह कितने दु:ख की बात है कि आर्य कहलाने वाले लोग भगवान् राम और भगवती सीता के इस अपमानरूपी विष को अमृत समझकर पी रहे हैं ! जो सीता 11 मास से रावण राक्षस की जेल में अकथीय अत्याचारों पीड़ाओं तथा अपमानों को सहन कर रही थी और रावण की नस नस में धूर्तता, निष्ठुरता और दुश्चरित्रता को देख रही थी, जो सीता रावण को कुत्ते से भी नीच जानती थी वही सीता रावण को यज्ञ का ब्रह्मा कैसे मान सकती थी और अपने सिर के पवित्र शृङ्गार को रावण को कैसे दिलवा सकती थी?

पाठकों की जानकारी के लिये यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि जब हनुमान् सीता की खोज के लिये लंका में गया था और वहाँ वह सीता के पास पहुँच गया था, अशोक वाटिका में हनुमान् ने सीता को

राम का सन्देश दिया और परिचयार्थ राम की अंगूठी दी थी और सीता ने भी राम को सन्देश देते हुये अपने सिर की चूड़ामणि हनुमान् को दे दी थी। वाल्मीकि जी ने लिखा है—

ततो वस्त्रगतं मुक्ता दिव्य चूड़ामणिशुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ।।''

अर्थ—फिर सीता ने अपने वस्त्र की गाँठ में से खोलकर उस दिव्य और पवित्र चूड़ामणि को दे दिया और कहा कि यह चूड़ामणि श्री राम जी को दे देना।'' हनुमान् ने लंका से लौटकर और किष्किन्धा में पहुँचकर वह चूड़ामणि राम को दे दी उससे राम को बड़ी प्रसन्नता हुई। पाठक विचार करें कि सीता ने जब पहले ही अपने सिर की चूड़ामणि राम के पास भेज दी थी वह फिर सीता के पास कहाँ से पहुँच गई?

यह लाल भुजक्कड़ कृष्णदत्त राम को इतना दीनहीन सिद्ध करना चाहता है कि उस बेचारे के पास यज्ञ की दक्षिणा देने के लिये कुछ भी नहीं था इसलिये विवश होकर अपने अपनी पत्नी के शिरोमणि सिंगार को दक्षिणा रूप में देना पड़ा। जिस राम के चरणों में किष्किन्धा के राजा सुग्रीव का सारा राज्य, सारी सम्पत्ति और सारी सेना अर्पित हो उसके लिये यज्ञ की दक्षिणा के लिये कुछ न हो यह तो कृष्णदत्त के मस्तिष्क का पागलपन ही है इसमें लेशमात्र भी सच्चाई नहीं है।

यहाँ तो छोटा मुँह बड़ी बात वाली कहावत चरितार्थ होती है। एक मूढ़मति व्यक्ति को अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कुछ व्यक्तियों ने उसको सिद्ध बनाकर भगवान् राम, उनकी पूजनीय माताओं और विश्व पूज्या भगवती सीता के सम्बन्ध में उनके मुँह से गन्दी से गन्दी बातें कहलवानें में तनिक भी लज्जा अनुभव नहीं की।

कृष्णदत्त के मुख से इन स्वार्थी लोगों ने कहलवाया—"हे सीते ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नहीं तो मेरी

लंका को चलो?-- इसका उत्तर इस मूढमति ने सीता के मुख से क्या कहलवाया? उसे जरा सुहृज्जन हृदय को सम्भाल कर सुनें ! सीता ने कहा हे विधाता ! आज से मेरे पिता ब्रह्मा बन गये हैं। मुझे तो यहाँ भी ऐसा ही और वहाँ भी ऐसा ही, भगवन् में आपके साथ चलूँगी।'' पाठक जरा अपने मस्तिष्क को सन्तुलित करके यह निश्चय करें कि क्या यह वही सीता है जो जनक दुलारी दशरथ की पुत्रवधू कौसल्या की स्नुषा राम की हृदयेश्वरी लक्ष्मण की आराध्या देवता संसार की पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ और राम को प्राणों से अधिक प्यार करने वाली, जिसने राम के चरणों की सेवा को ही अपना स्वर्ग अपनी अयोध्या अपनी मिथिला और अपना सब कुछ समझा हुआ था। जिसके पातिव्रत्य और पति प्रेम की महिमा को गाते गाते वाल्मीकि ऋषि भक्त तुलसीदास और सारी हिन्दु जाति आज तक नहीं थकती उसी के मुख से कृष्णदत्त कहलवाता है कि मेरे लिये राम और रावण एक समान है और अन्तिम विचार रावण के साथ जाने का ही करती है !!! भगवान् राम और भगवती सीता के ऊपर इतना अत्याचार तो रावण ने भी नहीं किया जितना इस रावण के क्रीतदास आर्य संस्कृति के कट्टर शत्रु कृष्णदत्त और इसकी चण्डाल चौकड़ी ने किया है ! रावण ने सैकड़ों उपाय किये कि किसी प्रकार सीता रावण के साथ प्रसन्न मुख होकर बात करे परन्तु सीता ने कभी सन्मुख होकर बात नहीं की वह हर समय राम का ही ध्यान करती थी और चाहती थी कि मैं एक क्षण में राम के पास पहुँच जाऊं, परन्तु कृष्णदत्त कहता है कि रावण ने सीता को राम के पास पहुँचा दिया था। परन्तु सीता स्वयं अपनी इच्छा से राम को छोड़कर रावण के पास ही चली आई ! और कृष्णदत्त इस को धर्म की संज्ञा देता है वह कहता है ''मुनिवरो ! इसका नाम धर्म है। राम ने भी यह नहीं कहा कि सीते तू

कहाँ जाती है?" इससे स्पष्ट है। कि कृष्णदत्त उस धर्म को नहीं मानता जिसको महर्षि वाल्मीकि मानते थे जिसको मनुभगवान् और सारे ऋषि मुनि मानते चले आते हैं। और जिसके उपर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम आचरण करते थे ! कृष्णदत्त की दृष्टि में ऐसा वाममार्ग जिसमें स्त्री स्वेच्छाचारिणी होकर जिसके साथ जाना चाहे उसी के साथ चली जावे और पुरुष भी अपनी विवाहिता स्त्री को किसी के पास जाने से न रोके वही धर्म है। जहाँ मिली तवा-परात वहीं गुजारी सारी रात' कृष्णदत्त की दृष्टि में राम तो सर्वथा निर्धन था, और रावण बड़ा द्रव्यपति था, उसके सोने के महल थे और उसके घर में मणियों के ढेर लगे हुए थे, इसलिये कृष्णदत्त ने यही अच्छा समझा कि सीता राम को छोड़कर रावण की सोने की लंका में चली जावे! बेचारे राम के पास सीता की एक ही निशानी सिर का कौड़ी जुड़ा शेष था उसको भी कृष्णदत्त ने रावण को भेंट चढ़वा दिया!!!

कृष्णदत्त के अनुगामी हो जाने पर आर्य हिन्दु जाति को अपने इतिहास में और अपनी संस्कृति में आमूल चूल परिवर्तन करना पड़ेगा। और सारे पर्व और त्यौहारों को तिलांजली देनी पड़ेगी तथा रामलीला के स्थान में रावण लीला की स्थापना करनी पड़ेगी! क्योंकि कृष्णदत्त के अनुसार रावण ने तो सच्चे हृदय से सम्मानपूर्वक सीता को राम के हवाले कर दिया था और सीता को भी खुले दिल से कह दिया था कि सीते तुम्हारी इच्छा राम की सेवा करने की हो तो उसके पास रहो। रावण ने तो वही कर्म किया जो विभीषण चाहता था कुम्भकरण चाहता था रावण का नाना माल्यवान् चाहता था और रावण की पत्नी मन्दोदरी चाहती थी कि रावण सम्मान पूर्वक सीता को राम के पास लौटा दे! और राम ने भी महावीर अङ्गद को अपना दूत बनाकर रावण से कहलवाया—

"अराक्षसमिमं लोकं कर्ता ऽस्मि निशितैः शरैः।

नो चेत्छरणमभ्येषि मामुपादाय मैथिलीम्॥

यदि तू मेरी शरण में आकर मैथिली को मुझे नहीं सौंपेगा तो स्मरण रख मैं इस लोक को अपने पैने बाणों से राक्षसों से शून्य कर दूंगा। जब कृष्णदत्त के कहने के अनुसार रावण ने युद्ध के आरम्भ होने से पहले ही समुद्र के उत्तर तट पर जाकर सीता को राम के हवाले कर दिया और राम को विजेता मान लिया तो अब कौनसी बात रह गई थी जिसके लिये समुद्र पर पुल बांधकर लंका पर चढ़ाई की गई? ऐसा मानने से तो राम ही दोषी ठहरता है और उसी को अत्याचारी और अधर्मी मानना चाहिये! और कृष्णदत्त का वास्तविक तात्पर्य भी यही है। कि राम को बदनाम किया जावे और रावण की प्रशंसा के गीत गाये जाएं!

कृष्णदत्त ने रावण को सच्चा ब्राह्मण बनाने के लिये अपने प्रवचन में कहा है—"मुनिवरो! महीराष्ट्र का राजा महीदन्त था। वह चक्रवर्ती राजा होने के नाते लंका भी उसके आधीन थी। एक समय पुलिस ऋषि महाराजा ने महाराज शिव से निवेदन करके लंका में एक स्थान नियत किया था। स्वर्ण का गृह था जिसमें महाराज पुलिस विश्राम किया करते थे। कुछ समय के पश्चात् ऐसा हुआ कि जो जिस राष्ट्र का राजा था वह उस राष्ट्र का राजा चुना गया। महीदन्त का छोटा सा राज्य रह गया। राजा महीदन्त के न तो कोई पुत्र था और न कोई कन्या थी। कुछ दिन के पश्चात् ऐसा सुना गया कि महाराजा महीदन्त के एक कन्या उत्पन्न हुई तो राजा महीदन्त ने बड़ा ही आनन्द मनाया। नाना वेदों के पाठ कराये, जन्म संस्कार बड़े उत्सव से कराया। उसके पश्चात् बेटा कन्या प्रबल हुई तो महाराजा की पत्नी सुरेखा ने कहा—

हे भगवन् ! इस कन्या को तो गुरु के कुल में जाना चाहिये! जिससे भगवन् ! यह विद्या पाकर परिपक्व हो जाये। उस समय महाराजा

महीदन्त ने अपनी पत्नी की याचना को पाकर उस कन्या को लेकर कुल पुरोहित महर्षि महाराजा के समक्ष पहुँचे। बेटा ऐसा है कि उस समय वह दो सौ चौरासी वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी थे। वहाँ पहुँचकर राजा ने और कन्या ने भी महर्षि के चरणों को स्पर्श किया और राजा ने कहा 'भगवन् मेरी कन्या को यथार्थ विद्या दीजिये जिससे भगवन् मेरी पुत्री हर प्रकार की विद्या में सफल हो जाये।' महर्षि वाल्मीकि ने इस सम्बन्ध में ऐसा वर्णन किया है कि राजा महीदन्त तो अपने स्थान पर चले गये और ऋषि ने उस कन्या को शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शिक्षा पाते पाते वह कन्या बड़ी विद्वान् बनी और विद्या में बहुत ऊँची सफलता प्राप्त की। वह नैतिक यज्ञ और कर्मकाण्ड में प्रकाण्ड हो गई। वह वेदों का हर समय स्वाध्याय करती थी। उस समय ऋषि ने अपने मन में सोचा कि यह कन्या तो क्षत्रिय की है परन्तु इसके गुणों को देखते हैं तो ब्राह्मण कुल में जाने योग्य है। अब क्या करना चाहिये। ऋषिवर यही नित्य प्रति विचारा करते थे।

तो मुनिवरो ! आगे हमने सुना कि कुछ काल पश्चात् वह कन्या युवा हो गई जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा परिपक्व होता है। वह कन्या अपने ब्रह्मचर्य से परिपक्व थी। राजा अपनी धर्मपत्नी के कथनानुसार वहाँ से बहते भए। ऋषि से जाकर प्रार्थना की कि भगवन् ! अब कन्या को गृह में ले जाना चाहते हैं। अब इसका संस्कार होना चाहिये। अब मुझे नियुक्त कीजिये कि मेरी कन्या कौन से गुण वाली है किस वर्ण में इसका संस्कार होना चाहिये? अहा उस समय बेटा ! ऋषि ने कहा—भाई तुम्हारी कन्या तो ऋषि कुल में जाने योग्य है। आगे तुम किसी के द्वारा इसका संस्कार करो हमें कोई आपत्ति नहीं। राजा वहाँ से उस ब्रह्मचारिणी कन्या को लेकर राजगृह आ गये।

https://t.me/AryavartPustakalay

टिप्पणी—(कृष्णदत्त सब जगह 284 वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारियों का वर्णन करता है वह कुन्ती के गुरु को 284 वर्ष का कहता है और अपने आप को भी 284 वर्ष का कहता है।)

मुनिवरो ! हमारे यहाँ यह परिपाटी है कि ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी गुरुकुल से आये तो माता पिता यजन और ब्रह्मभोज कर उसका स्वागत करें। मुनिवरो ! इसी प्रकार माता पिता ने कन्या का यथाशक्ति स्वागत किया। स्वागत करने के पश्चात् हमने ऋषि वाल्मीकि के कथनानुसार ऐसा सुना है कि पत्नी ने अपने पति से कहा—'महाराज ! अब तो हमारी कन्या युवा हो गई है। इसके संस्कार का कोई कार्य करो।

उस समय बेटा ! महाराज नित्य प्रति वर के लिए भ्रमण करने लगे भ्रमण करते 2 पुलिस ऋषि महाराज के पुत्र मनिचन्द के द्वार जा पहुँचे, मनिचन्द के एक पुत्र था जो वाल्मीकि के कथनानुसार अढ़तालीस वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी था। वह प्रजन्य ब्रह्मचारी वेदों का महान् प्रकाण्ड था। महाराज ने मनिचन्द से निवेदन किया—मेरी कन्या को स्वीकार कीजिये। मैं तुम्हारे पुत्र से अपनी कन्या का संस्कार करना चाहता हूँ।' उस समय मनिचन्द ने कहा—

"महाराज ! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ हैं जो इतनी तेजस्वी कन्या हमारे कुल में आये?" उस समय बेटा ! उस बालक अरुण ने और माता पिता ने उसके संस्कार को स्वीकार कर लिया। उस समय राजा मग्न होते हुए अपने घर आ पहुँचे नक्षत्रों के अनुकूल समय नियुक्त किया गया। मनिचन्द अपने पुत्र वरुण से बोले कि हे पुत्र ! आदि ब्राह्मण जनों का समाज होना चाहिये। जिस कन्या का जिस पुत्री का वेद के विद्वानों में विद्वत् मन्डल में संस्कार होता है उसका कार्य हमेशा पूर्ण हुआ करता है। उस समय बेटा ! नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया ...

विद्वत् समाज.... राजा महीदन्त के समक्ष आ पहुँचा... ब्रह्मचारिणी अपने पति का स्वयं सत्कार करने जा पहुँची.... अहा' बड़े आनन्द पूर्वक सायं काल कन्या के सत्कार का समय आ गया.... ब्रह्मचारी अपने मन्त्रों का गान गा रहा था। ब्रह्मचारिणी अपने वेद मन्त्र गा रही थी! बड़ी आशानन्दी से बेटा ! वह संस्कार समाप्त हो गया.... अगला दिवस आया, उस समय शरद् वायु चल रही थी उसके कारण उस बालक के सम्बन्धी स्नान नहीं कर रहे थे, उस समय उस बालक ने कहा—'अरे ! तुम स्नान क्यों नहीं कर रहे? उस समय उन्होंने कहा—अरे स्नान क्या करें? शरद् वायु चल रही है।

तो मुनिवरो ! उस बाल ब्रह्मचारी ने जो वेदों का ज्ञाता था जो विज्ञान की मर्यादा जानता था उसने प्रयत्न किया और कहा—वायो देव तुम हमारे कार्य में विघ्न डाल रहे हो। कुछ समय के लिये शान्त हो जाओ। उस समय उस ब्रह्मचारी के संकल्पों द्वारा वायु कुछ धीमी पड़ गई। सभी सम्बन्धियों ने स्नान किया।''

'विद्याबल की विजय'

उस बालक ने अपने गृह पहुँच कर सोचा कि मेरे सम्बन्धी ने जो यह कहा कि मेरी लंका को कुबेर ने विजय कर लिया तो आज मुझे कुबेर से लंका को विजय करना है। बुद्धिमान् सर्वत्र पूज्य होता है। पुलिस ऋषि महाराज का पौत्र था इसलिये वह जिस राष्ट्र में जाता था वहाँ ही उसका स्वागत हुआ जो स्वागत में कुछ देता, तो ब्रह्मचारी उससे माँगते दस हजार सेना मुझे दे दो जिससे मेरा काम बने। इस प्रकार प्रत्येक राज्य से दश दश हजार सेना एकत्र करके लंका पर हमला किया और राजा कुबेर को जीत लिया उस समय राजा कुबेर ने कहा था—अरे भाई तुम मुझे क्यों विजय कर रहे हो? उस समय उस महाब्रह्मचारीने कहा था 'अरे कुबेर ! मैं तेरे राष्ट्र में शान्ति नहीं देख रहा हूँ। जिस

काल में जिस राजा की प्रजा शान्त न हो उस समय राजा को पद से गिरा देना धर्म है और उस समय वह बालक वरुण राजा महीदन्त के पास जा पहुँचा और उनसे बोला—"महाराज मैंने ! आपकी लंका को विजय कर लिया है आप अपनी लंका को स्वीकार कीजिये।" उस समय राजा महीदन्त ने कहा—"हे ब्रह्मचारी ! लंका को तुमने विजय किया है, परन्तु स्वीकार करके मैंने यह लंका अपनी कन्या के दहेज में तुम्हें अर्पण कर दी।

तो मुनिवरो ! वहाँ सब राजा नियुक्त किये गये और वहाँ का राजा उस बालक को नियुक्त किया गया उस समय राजाओं ने ऋषियों का समाज नियुक्त किया और कहा कि भाई यह वरुण बालक लंका का स्वामी बना। इसका द्वितीय नाम क्या उच्चारण करे यह तो ब्रह्मचारी पद का नाम है। उस समय ऋषियों आचार्यों ने उस बालक का नाम रावण नियुक्त किया।

तो मुनिवरो ! यह है हमारा यथार्थ। तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि महाराज महीदन्त की कन्या का संस्कार उस बालक से हुआ जो ब्राह्मणों के गुणों वाला था आगे चलकर के चाहे कैसा गुण उसमें बन जाये?

यह 6, 7 पृष्ठों का लम्बा सन्दर्भ कृष्णदत्त की पुस्तक पुष्प नं० 2 पृष्ठ 68 से 74 तक इसलिये दिया है कि पाठकों को पता चल जावे कि कृष्णदत्त गुप्त रूप से वाममार्गी राक्षसी संस्कृति का समर्थक है और आर्य संस्कृति का विध्वंसक है और साथ ही यह भी पता चल जाये कि कृष्णदत्त के प्रवचनों में झूठी कल्पनाओं की कितनी भरमार है। अधिक दुःख की बात तो यह है कि कृष्णदत्त स्वयं तो झूठ की खान है ही परन्तु महर्षि वाल्मीकि जैसे निर्दोष और सत्यवादी को भी अपने झूठों में सम्मिलित करना चाहता है।

कृष्णदत्त ने अपने इस प्रवचन में कई बार यह कहा है। वाल्मीकि के कथनानुसार' वाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड के दूसरे सर्ग से लेकर 34वें सर्ग तक रावण और उसके पूर्वजों और अवरजों का इतिहास बड़े विस्तार के साथ दिया है। परन्तु कृष्णदत्त के प्रवचन की एक बात भी वाल्मीकीय रामायण में नहीं मिलती, बल्कि कृष्णदत्त के प्रवचन का खण्डन करने वाली बातें मिलती है वे बातें ये हैं—

(1) महीराष्ट्र नाम का कोई राष्ट्र नहीं था। (2) महीदन्त नाम का कोई राजा नहीं था। (3) इस नाम के राजा की लड़की का गुरुकुल में पढ़ना कहीं नहीं। (4) तत्त्वमुनि नाम के 284 वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी का कोई संकेत नहीं। (5) मनिचन्द नाम के किसी ब्राह्मण का जो वरुण का पिता कहा गया, कहीं संकेत तक नहीं। (6) रावण के पहले नाम वरुण का कहीं उल्लेख नही। (7) रावण के विधि पूर्वक विवाह का कहीं वर्णन नहीं। (8) रावण की कहीं बारात नहीं गई। (9) वायु के रोकने का कहीं वर्णन नहीं। (10) रावण के 48 वर्ष के ब्रह्मचर्य का कहीं उल्लेख नहीं। (11) रावण के विवाह के लिये नक्षत्र आदि का देखना कहीं नहीं लिखा। (12) रावण के विवाह पर स्वागत आदि की बात झूठी। (13) लंका में कुबेर के साथ रावण का युद्ध नहीं हुआ। (14) कुबेर विश्रवा ऋषि का पुत्र और पुलस्त्य ऋषि का वास्तविक पौत्र था रावण विश्रवा ऋषि का नियोगज पुत्र था इसलिये रावण कुबेर का भाई था। (15) कुबेर देवकोटि का महापुरुष था वह किसी को कष्ट नहीं देता था। (16) रावण द्वारा लंका का राज्य महीदन्त के हवाले करना झूठ है। (17) रावण को बार बार बालक कहना झूठ है। (18) कृष्णदत्त का अपने प्रवचनों में बार बार बेटा ! और मुनिवरो सम्बोधन करना ढोंग है। (19) कृष्णदत्त यथार्थवादी नहीं। (20) रावण के अन्दर जन्म से लेकर

मरण पर्यन्त एक भी गुण ब्रह्मण का नहीं था। इस एक ही प्रवचन में कृष्णदत्त ने 20 झूठ बोले हैं। इनके प्रमाण लीजिये—

वाल्मीकीय रामायण में–रावण का वंश परिचय

राम के पूछने पर अगस्त्य ऋषि ने राम से कहा—"हे राम ! पुराने समय में ब्रह्मा के दश पुत्रों में से एक पुलस्त्य नाम का ब्रह्मऋषि था वह बड़ा धर्मात्मा था वह एक समय धर्म प्रसंग से मेरु पर्वत के पास तृण बिन्दु राज ऋषि के आश्रम में रहने लगा—कुछ समय के पश्चात् राजऋषि तृणबिन्दु अपनी कन्या को लेकर पुलस्त्य ऋषि के समीप गया और कहा कि महाराज आप मेरी कन्या को भार्या रूप में स्वीकार करें पुलस्त्य ने उसको स्वीकार कर लिया। फिर पुलस्त्य ऋषि ने प्रसन्न होकर उस देवी से कहा कि हे देवी तुमने मेरे से वेद सुने हैं जबकि मैं यहाँ वेद का अध्ययन करता था इसलिये तुम्हारे से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसका नाम विश्रवा होगा। कुछ समय के पश्चात् उस देवी के गर्भ से 'विश्रवा' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने पिता के समान ही यश और धर्म से सम्पन्न था। जब वह युवा हो गया और तप तथा स्वाध्याय में उसकी प्रसिद्धि हो गई तो भारद्वाज ऋषि ने अपनी पुत्री देव वर्णिनी का विवाह विश्रवा के साथ कर दिया। उस देववर्णिनी के गर्भ से विश्रवा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम देवऋषियों ने वैश्रवण रखा और उसकी अच्छी बुद्धि को जानकर कहा कि वह धनाध्यक्ष होगा। आगे उसका नाम कुबेर हो गया।

वह वैश्रवण बड़ा हो गया और विद्या, तप, ब्रह्मचर्य और सब श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हो गया तो उसके इन गुणों को देखकर उसके पितामह ब्रह्मा उस पर बड़े प्रसन्न हुए और वैश्रवण को धनाध्यक्ष (कुबेर) की उपाधि दी और विश्वकर्मा का बनाया हुआ पुष्पक विमान भी वैश्रवण को दे दिया। इसके अनन्तर वैश्रवण ने अपने पिता विश्रवा से कहा कि

पिताजी ! आप मेरे निवास के लिये ऐसा स्थान बतलाइये जो सर्वथा निरुपद्रव हो जहाँ मेरे द्वारा किसी भी प्राणी को किसी प्रकार की पीड़ा न हो। विश्रवा ने अपने पुत्र कुबेर से कहा कि हे बेटा ! दक्षिण समुद्र के दक्षिण तट पर त्रिकूट पर्वत पर विश्वकर्मा की बनाई हुई बड़ी सुन्दर लंकापुरी नाम की एक नगरी है। वहाँ पहले राक्षस लोग रहते थे। उनको देवों ने वहाँ से मार भगाया है। इस समय वह पुरी सर्वथा निर्जन और निरुपद्रव है। उस नगरी का कोई स्वामी नहीं है। हे वत्स ! तुम वहाँ निवास के लिये जाओ। वह निवास तुम्हारे लिये सर्वथा निर्दोष है और किसी प्रकार की वहाँ बाधा नहीं। तब वह विश्रवा का पुत्र कुबेर वहाँ चला गया और बड़े सुख के साथ वहाँ रहने लगा।

(वा० उत्तर काड सर्ग 2, 3)

रावण का मातृवंश

राम ने आश्चर्य पूर्वक महर्षि अगस्त्य से पूछा कि जब राक्षस लंका छोड़कर चले गये थे तो राक्षस लोग लंका में फिर से कैसे आ गए? और राक्षसों ने क्या अपराध किया था कि देवों ने राक्षसों को लंका से भगा दिया था महर्षि अगस्त्य ने राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा कि—विद्युत्केश नाम के राक्षस ने सालकटङ्कटा नाम की राक्षसी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ उस बालक को उत्पन्न होते ही उन राक्षसों ने उसे जंगल में फैंक दिया, अकस्मात् वहाँ पर शिवजी महाराज पार्वती सहित आ गये और उस बालक को उठा लिया उसका पालन पोषण किया तथा उसका नाम सुकेश रखा वह बालक अच्छे संस्कारों में पलकर धार्मिक हो गया और कालान्तर में 'ग्रामणी' नाम के गन्धर्व ने अपनी कन्या देववती को सुकेश के साथ विवाह दिया। देववती से तीन पुत्र उत्पन्न हुये—माल्यवान्, सुमाली और माली। ये तीनों भाई बड़े बलवान् और सुन्दर थे। इन्होंने मेरु पर्वत पर जाकर भारी तप किया।

इनके घोर तपों से प्रभावित होकर देवों ने इनको आशीर्वाद दिया और उनको निवास के लिये लंका में जाने की सम्मति दी। ये राक्षस लोग दक्षिण समुद्र के दक्षिण तीर पर त्रिकूट पर्वत पर चले गये और उनके लिए विश्वकर्मा ने बड़े परिश्रम से त्रिकूट पर्वत पर बड़ी सुन्दर नगरी बनायी जिसको लंका के नाम दिया गया। उसके बहुत से पुत्र और पुत्रियाँ हुई और भी राक्षस वहाँ आकर बस गये। इस प्रकार से राक्षसों की बहुत बड़ी संख्या बढ़ा गई, वहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ थी उसमें उन्होंने बड़ा परिश्रम करके लंका को धन धान्य से पूर्ण कर दिया। सम्पत्ति पाकर मूर्ख लोग कुमार्ग पर चल ही पड़ते हैं अत: इन राक्षसों ने भी उत्पात आरम्भ कर दिये और जिन देव पुरुषों ने उनकी रक्षा की और उनको सुख से बसने के लिये उनको आशीर्वाद और सहायता की थी उन्हीं देव पुरुषों और ऋषियों को सताना आरम्भ कर दिया, जब अत्याचार और उत्पीड़न सीमा को पार कर गये तो देव पुरुषों ने संगठन किया और अपने विष्णु की अध्यक्षता में राक्षसों के साथ युद्ध छेड़ दिया इस युद्ध में देवों की विजय हुई और देवों ने राक्षसों को लंका से मार कर भगाया। राक्षस लोग रसातल में पहुँच गये और लंका में कोई राक्षस न रहा। कुछ समय के पश्चात् वैश्रवण अर्थात् कुबेर अपने पिता विश्रवा के आदेश से लंका में आ बसा।'' वाल्मीकीय उ० सर्ग 5–7। महर्षि ने श्री राम जी से राक्षसों की उत्पत्ति, लंका में उनके निवास, देवों के साथ उनके युद्ध, युद्ध में राक्षसों की हार और लंका को छोड़कर राक्षसों के पाताल में चले जाने के पश्चात् रावण आदि की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार से किया—

रावण की उत्पत्ति

महर्षि अगस्त्य ने श्री राम जी से कहा—हे राम ! किसी समय सुमाली नाम का राक्षस अपनी पुत्री कैकसी को साथ लिये मृत्युलोक में

घूम रहा था। उसने वहाँ देखा कि कुबेर पुष्पक विमान में बैठकर अपने माता पिता को देखने के लिये आकाश मार्ग से जा रहा था वह देवों के समान अग्नि के तेज की तरह चमक रहा था। सुमाली ने सोचा कि हम राक्षस लोग जो भूमितल से गिर कर रसातल में पहुँच गये हैं। अपनी पूर्वावस्था को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? उसने अपनी पुत्री कैकसी को कहा बेटी ! तुम विवाह के योग्य हो गई हो, तुम्हारा यौवन भी बीत रहा है। हमारी दुष्कीर्ति के कारण वर तुम्हें लेने से डरते हैं। हम भी इसीलिये बन्धे हुये हैं। बेटी ! हम नहीं जानते कि तुम्हें कौन बरेगा? पुत्री ! तुम स्वयं प्रजापति के कुल में उत्पन्न हुए श्रेष्ठ मुनि विश्रुवा के पास जाओ और उस पुलस्त्य ऋषि के पुत्र को अपना पति बनालो। उस से तुम्हारे पुत्र भी सूर्य के समान तेजस्वी हो जायेंगे। जैसे विश्रवा का पुत्र कुबेर है। कैकसी अपने पिता के वचनों को सुनकर वहाँ चली गई। जहाँ विश्रवा तप कर रहा था। उस समय विश्रवा अग्नि होम करने के लिये बैठे थे कि कैकसी अपने पिता के प्रभाव से उस दारुण समय का विचार किये बिना विश्रवा के सामने जाकर खड़ी हो गयी और उसके चरणों की ओर देखती हुई पैरों के अंगूठे से भूमि को खुरचने लगी। उसको देखकर ऋषि ने पूछा। भद्रे तुम किसकी पुत्री हो? और यहाँ कैसे आई हो? कैकसी ने हाथ जोड़कर कहा कि हे मुने ! आप मेरे अभिप्राय को जान सकते हो। परन्तु आप इतना ज्ञान लीजिये कि मैं अपने पिता के आदेश से आई हूँ और कैकसी मेरा नाम है। शेष आप जान सकते हैं। मुनि ने ध्यान किया और कहा कि तुम्हारे मन में मेरे से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा है। तुम दारुण समय में मेरे पास आई हो। इसलिये सुना कि तुम्हारे से किस प्रकार की सन्तान उत्पन्न होगी? तुम्हारी सन्तान दारुण (दु:ख देने वाली) होगी। उसकी आकृति भी भयानक होगी और ऐसे लोगों से उनका प्रेम भी होगा।

हे देवी ? तू राक्षसों को और क्रूर कर्म करने वालों को जन्म देगी ! कैकसी ने ऋषि के ये वचन सुन कर उसके चरणों में गिर कर निवेदन किया कि भगवन् आप जैसे ब्रह्मवादी से मैं इस प्रकार की दुराचारी सन्तान की कामना लेकर नहीं आई। आप मेरे ऊपर कृपा कीजिए। उस मुनिश्रेष्ठ विश्रवा ने उस कन्या की बात सुनकर कहा कि हे देवी ! तेरी जो अन्तिम सन्तान होगी वह मेरे वंश के अनुरूप होगी और वह धर्मात्मा होगी इसमें संशय नहीं।

हे राम ! कुछ काल के पश्चात् कैकसी ने बड़े डरावने और दारुण पुत्र को उत्पन्न किया। उसके पिता ने उसका नाम दशग्रीव रखा।.... उसके अनन्तर कुम्भकरण का जन्म हुआ। फिर शूणर्पखा का जन्म हुआ जो विकृतमुख वाली थी। कैकसी की अन्तिम सन्तान विभीषण था जो धर्मात्मा था। वे दोनों रावण और कुम्भकरण उस बड़े भारी बन में बढ़ते रहे और लोगों को दु:ख देते रहे। कुम्भकरण तो ऋषियों और मुनियों को मार कर खा जाता था और विभीषण तो धर्मात्मा था वह सदा धर्म में व्यस्त रहता था। वह नियमित खान पान और इन्द्रियों को वश में करता हुआ वहाँ रहा।

फिर किसी समय वैश्रवणदेव (कुबेर) अपने पिता विश्रवा से मिलने के लिये पुष्पक विमान से उस वन में आया। कैकसी ने उसको देखा कि वह अत्यन्त तेज से देदीप्यमान है। तब कैकसी दशग्रीव के पास आकर बोली, बेटा ! कुबेर को देखो, वह तुम्हारा भाई है। भाईपने में समान होते हुये भी तुम देखो, कि तुम्हारी दशा कितनी बुरी है। इसलिये मेरे पुत्र तुम ऐसा घोर प्रयत्न करो कि तुम भी कुबेर के समान हो जाओ। माता के वचनों को सुन कर रावण को अत्यन्त क्रोध आया और उसने प्रतिज्ञा की कि हे माता ! आप अपने सन्ताप को छोड़ दीजिये। मैं आप के सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कुबेर के समान ही नहीं अपितु

https://t.me/AryavartPustakalay

उससे बढ़कर हो जाऊँगा। फिर रावण उस क्रोध से भरा दुष्कर्म करने की इच्छा से तप करने का इरादा करके अपने भाईयों के साथ गोकर्णाश्रम में चला गया।'' (वा० उ० सर्ग० 9)

''जब रावण आदि तीनों भाईयों ने घोर तपस्या करके सिद्धि प्राप्त कर ली और देव पुरुषों को भी सन्तुष्ट कर लिया और देव लोगों ने भी उनको आशीर्वाद देकर उनको हर प्रकार की सहायता का वचन दे दिया तो उसके भाई बन्धु राक्षस लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे सब बड़ी संख्या में पाताल से चलकर रावण के पास आ गये। रावण के नाना सुमाली ने रावण से कहा कि वत्स ! यह लंका नगरी जिसमें हम बसते थे, उसको हमने विष्णु के भय से छोड़ दिया था और हमारे यहाँ से चले जाने पर कुबेर ने उस पर अधिकार किया हुआ है। यह लंका नगरी हमारी है। हे महाबाहो ! यदि हो सके तो अपने भाई कुबेर से साम, दाम, दण्ड से उसको वापिस लेने का प्रयत्न करो। हे तात ! निश्चय से तुम लंका के राजा हो जाओगे और तुम्हारे द्वारा ही यह डूबा हुआ राक्षस वंश उभर जायेगा। अपने नाना की इस बात को सुनकर रावण ने कहा कि कुबेर हमारा बड़ा भाई है, अत: उसके सम्बन्ध में ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये। सुमाली रावण की ये बातें सुनकर चुप हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् रावण के मामा 'प्रहस्त' ने रावण से कहा कि तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है कि 'कुबेर हमारा बड़ा भाई है' शूर वीर लोगों का किसी के साथ भातृभाव नहीं होता। देखो कश्यप की दो पत्नियां थी—दिति और अदिति, अदिति के गर्भ से देव हुए और दिति के गर्भ से राक्षसों का जन्म हुआ। उन दोनों का कितना संघर्ष हुआ? अत: कुबेर का लंका से हटा देना तुम्हारे लिए कोई निराली बात न होगी ! रावण यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने प्रहस्त को अपना दूत बनाकर कुबेर के पास भेजा।''

प्रहस्त का कुबेर के पास जाना

प्रहस्त रावण के सन्देश को लेकर कुबेर के पास लंका में गया और कुबेर से बोला—"हे सुब्रत ! मुझे तुम्हारे भाई दशग्रीव ने तुम्हारे पास भेजा है। और सन्देश दिया है कि इस लंका पुरी में पहले सुमाली आदि राक्षस लोग राज्य करते थे।

इसलिये आपसे नम्रता पूर्वक निवेदन किया जाता है कि हे तात ! आप इस नगरी को राक्षसों को दे दीजिए? प्रहस्त के इन वाक्यों को सुन कर देव वैश्रवण (कुबेर) बोला—'कि इस नगरी को राक्षसों से शून्य देखकर मेरे पिता ने यह मुझे दे दी थी मैने इस नगरी में राक्षसों को भी दानमान आदि गुणों से बसाया है। तुम जाओ और रावण से कहो कि दशग्रीव ! मेरी जो नगरी है और जो राज्य है वह तुम्हारा भी है तुम इस राज्य का निष्कंटक भोग करो मेरे धन सम्पत्ति और राज्य को बिना बांटे ही तुम्हारे साथ में रहूँगा, यह सब कुछ मेरा और तुम्हारा इकट्ठा रहेगा !' यह कहकर कुबेर अपने पिता के पास गया और उसने रावण के सन्देश की सब बातें सुनाई और हाथ जोड़कर पिता से पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिए?

विश्रवा ने कहा कि उस दुर्मति रावण ने मुझे भी कई बार ये बातें कही हैं। मैने उसको कई बार झिड़का भी है और मैंने बार-बार क्रोध से यह भी कहा है कि तू नष्ट हो जायेगा। हे पुत्र कुबेर ! तुम्हारे लिये जो कल्याण करने वाली, धर्मानुकूल और युक्तियुक्त बात है उसको सुनो ! रावण तो वरदान पाकर इतना अभिमानी हो गया है कि उसकी बुद्धि मान्य और अमान्य को समझने में असमर्थ हो गई है। इसलिए तुम लंका को छोड़कर अपने साथियों सहित कैलास पर्वत पर जा बसो! कुबेर ने अपने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया और अपने परिवार और मन्त्री

आदि सहित लंका को छोड़ कर कैलास को अपना निवास स्थान बना लिया।" (वा० उ० सर्ग 11)

रावण का लंका में अभिषिक्त होकर रहना

प्रहस्त ने रावण को जाकर सूचना दे दी कि कुबेर ने अपनी इच्छा से लंका को खाली कर दिया है। इस सन्देश को पाकर रावण अपने भाइयों और साथियों सहित लंका में चला गया और रिवाज के अनुसार उसका राज्याभिषेक किया गया' रावण अभिषिक्त होकर अपने भाइयों सहित लंका में रहने लगा और उसने फिर अपनी बहन शूर्पणखा का विवाह करने की सोची। अत: रावण ने अपनी बहन शूर्पणखा का विवाह विद्युज्जिह्व राक्षस के साथ कर दिया।'

रावण का विवाह

एक बार रावण शिकार के लिए वन में घूम रहा था उसने वहाँ दिति के पुत्र मय को देखा कि वह अपनी पुत्री को साथ लिये हुए है। रावण ने पूछा कि तुम कौन हो और इस निर्जन वन में अकेले ही क्यों घूम रहे हो? इस मृगनयनी के साथ क्यों रहते हो? उसने अपनी सारी कथा सुनाई और कहा कि देवताओं ने मुझे हेमा नाम की अप्सरा दी थी, मैं बहुत दिनों तक उसके साथ रहा वह फिर दैवत कार्य के लिये चली गई उसको गये हुए 13 वर्ष हो चुके हैं, यह चोहदवाँ वर्ष है कि मैं हीन, दीन और दुखी हेममयपुर में रहता था। उस नगर में मैं अपनी इस पुत्री को लेकर इस वन में आया हूँ। यह मेरी लड़की उस ही अप्सरा के पेट से जन्मी है। मैं इस कन्या के लिये वर की तलाश में हूँ मेरी इस पत्नी से दो पुत्र भी उत्पन्न हुए थे-एक का नाम मायावी था और दूसरे का दुन्द्भी है। मैंने तो आपको सब कुछ बतला दिया और अब आप भी बताइये कि आप कौन हैं? यह सुनकर उस राक्षस ने कहा मैं पौलस्त्य

(विश्रवा) का पुत्र हूँ मेरा नाम दशग्रीव है अर्थात् मैं विश्रवा मुनि का पुत्र हूँ।

(महर्षि अगस्त्य ने कहा) हे राम ! मय दानव ने रावण को महर्षि का पुत्र समझकर उसी समय अपनी पुत्री को उसको देना उचित समझा और अपनी कन्या का हाथ रावण के हाथ में पकड़ाकर हंसते हुए कहा—हे राजन् मेरी पत्नी हेमा से उत्पन्न हुई मन्दोदरी नाम वाली को पत्नीरूप में ग्रहण कीजिये ! दशग्रीव ने भी उसे स्वीकार कर लिया और वहीं अग्नि जलाकर मन्दोदरी का पाणिग्रण कर लिया। अगस्त्यजी कहते हैं कि मय दानव ने रावण की बड़ी भारी शक्ति के भय से और पितामह के कुल को जानकर अपनी कन्या रावण को दे दी।" (वा०उ० सर्ग 12)

मैंने अपने इस लेख में कृष्णदत्त जी के प्रवचन पुष्प 2 के पृ० 68 से 74 तक के सन्दर्भ को उद्धृत किया है और साथ ही वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के सर्ग के 2, 3, 5, 6, 7, 9, 10, 11, 12 सर्गों के आधार पर रावण के पैतृक वंश, मातृवंश, रावण की उत्पत्ति रावण का चरित्र उसके गुण कर्मस्वभाव, रावण का लंका में प्रवेश, कुबेर के साथ रावण का सम्बन्ध, कुबेर का सौजन्य, कुबेर का स्वेच्छा से ही भ्रातृ स्नेह के कारण लंका का राज्य रावण को सौंप देना बातें उद्धृत किया है।

मैंने ये दोनों प्रकार के सन्दर्भ विस्तार के साथ इसलिये दिये हैं ताकि पाठकों को दोनों सन्दर्भों को पढ़कर उनका परस्पर मिलान करने में सरलता हो और वाल्मीकीय रामायण को इधर उधर ढूंढने की आवश्यकता न हो ! पाठक इस लेख को पढ़कर स्वयं यह अनुभव करेंगे कि कृष्णदत्त के 7 पृष्ठ के प्रवचन में एक भी बात वाल्मीकीय रामायण के अनुकूल नहीं, अपितु वाल्मीकि ऋषि के लेख के सर्वथा प्रतिकूल हैं और चूँकि वाल्मीकीय रामायण महर्षि का लिखा हुआ आर्य ग्रन्थ है राम और रावण के इतिहास से सम्बन्धित और कोई इतिहास

इतना प्रामाणिक नहीं माना जा सकता जितना वाल्मीकीय रामायण ! इसलिये कृष्णदत्त के प्रवचन सर्वथा झूठ और कपोल कल्पित हैं। और वैदिक धर्म और संस्कृति को अपमानित करना इस वाममार्गी चौकड़ी का उद्देश्य है !

कृष्णदत्त ने भगवान् राम और आर्यजाति की पूजनीया माता सीता के चरित्र पर आक्रमण करके ही सन्तोष नहीं किया अपितु उनके पुत्र कुश को भी व्याभिचार की संतान सिद्ध करने का दुष्कृत्य किया है, प्रथम पुष्प के प्राक्कथन के पृ० 23 में लिखा है—"इसी प्रकार कुश का जन्म सुरक्षित नाम के ऋषि की सुमित्रा नामक कन्या से बतलाया है जिसकी पालना सीता ने की और राम का पुत्र कहलाया। यह भी बतलाया कि इस ब्रहित नाम के ब्रह्मचारी से गर्भ रह गया था और पुत्रोत्पत्ति के बाद लज्जावश उसे कुशा पर स्थिर कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़कर अपने स्थान को चली गई थी !"

कृष्णदत्त की शरारत भरी यह क्रूरता भी आर्यजाति के जले हुए तन पर नमक छिड़कने के समान है कि भगवान् राम और भगवती सीता की अन्तिम निशानी को भी दूषित करने से न चूके ! लव और कुश के जन्म आदि के सम्बन्ध में जितनी जानकारी महर्षि वाल्मीकि को थी इतनी संसार के किसी और व्यक्ति को नहीं हो सकती थी। वाल्मीकि ऋषि ने स्वयं राम के सामने बड़ी भारी सभा में जिसमें बड़े-बड़े ऋषि लोग भी ये शपथ खाकर कहा था—

"इमौ तु जानकी पुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ॥

(वाल्मी० उत्तर काण्ड स० 96-97)

हे राम ये दोनों जुड़वां पुत्र सीता से उत्पन्न हुए हैं मैं सत्य कहता हूँ कि वे दोनों तेरे ही हैं। मैं प्रचेतस का दसवां पुत्र हूँ मैं कभी असत्य नहीं बोलता, वे दोनों पुत्र तेरे ही हैं।''

भगवान् राम ने स्वयं विद्वानों की सभा में स्वीकार किया था—

जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशलीवौ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे॥

मैं जानता हूँ कि ये दोनों पुत्र जो सीता के गर्भ से जुड़वां उत्पन्न हुए थे मेरे ही हैं जिनका नाम कुश और लव है।''

इतने पुष्ट प्रमाणों के होते हुए कृष्णदत्त की यह बकवास ही मानी जायेगी कि 'कुश' व्याभिचार की सन्तान था।

कृष्णदत्त के प्रवचनों का रहस्य यही है कि वह या तो अपनी मूढ़ता के कारण या जान बूझकर किसी ऐसे सम्प्रदाय का अनुयायी है जो वैदिक धर्म का विरोधी है। नहीं तो ऐसा सम्भव नहीं था कि आर्य राजाओं के इतिहास में ही नहीं बल्कि संसार के सब राजाओं में सबसे उज्ज्वल चरित्र वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम, राम की पूजनीया माता कौसल्यादि, राम की पत्नी सीता और उनके पुत्र कुश के चरित्रों को इतना नीचा दिखाने का प्रयत्न करे? आज संसार के इतिहास में सबसे अधिक बदनाम, संसार में सबसे अधिक दुश्चरित्र, छली, कपटी और पापी राक्षस रावण को जिसको लाखों वर्षों से आर्य जनता अत्यन्त घृणा के साथ स्मरण करती रही हो उसको इतना ऊँचा उठाना कि राम और सीता भी उसके चरणों में गिरें और उसको अपना पूज्य समझें ! विद्वान् और समाज सुधारक लोग प्रवचन इसलिये करते या कराते हैं कि जिससे सदाचार की वृद्धि हो और दुराचार का नाश हो ! मैं अनुसंधान समिति के संयोजकों से पूछता हूँ कि कृष्णदत्त के उन प्रवचनों से जो उसने अपने स्थान पर एकत्रित जनता के सामने दशरथ की रानियों को नग्न

करने की बात से कही, जनता के सदाचार में क्या वृद्धि हुई? याद रखो ! किसी जाति के इतिहास को विकृत करना उस जाति के ऊपर सबसे बड़ा अत्याचार है। किसी अंग्रेज ने आर्यों को मिटाने के लिये अपने देश वालों से यही कहा था—

If you want to destroy a nation, destroy its history and nation will perish of its own accourd,"

अर्थात् यदि तुम किसी जाति को नष्ट करना चाहते हो तो उसके इतिहास को समाप्त करदो, जाति स्वयमेव नष्ट हो जायेगी।

'वैदिक अनुसन्धान समिति' के संयोजकों को इतनी बड़ी मात्रा में इस प्रकार का साहित्य तैयार करना जिसमें एक मूढ़ व्यक्ति के माध्यम से यह कहकर कि यह पहले जन्म में शृङ्गी ऋषि था आर्यों के प्राचीन इतिहास को विकृत करना एक बड़ा भारी षडयन्त्र है। इस समिति के द्वारा छपवाई गई पुस्तकों में वाल्मीकीय रामायण और महर्षि व्यास द्वारा लिखे गये महाभारत के इतिहास को विकृत करके आर्य राजाओं के चरित्रों को दूषित किया है। इससे बढ़कर अध्यात्म विद्या के सर्वश्रेष्ठ साहित्य उपनिषदों को विकृत करने से भी न चूके !

कृष्णदत्त का उपनिषदों के सम्बन्ध में भ्रामक प्रचार

उपनिषद् साहित्य आर्य जाति के अध्यात्म ज्ञान का अक्षय भण्डार है। यूरोप के सर्वोच्च विद्वानों ने भी (यद्यपि वे ईसाई थे) उपनिषदों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। शौपनहौर ने तो यहाँ तक लिखा है—

In the whole world there is no study exept that of the Vedas so beneficial and elevating as that of the Upnishads. It has been solace of my life and it will be solace of my death."

अर्थात् सारे संसार में कोई भी साहित्य (सिवाय वेदों के) मनुष्य के जीवन के लिये इतना उपयोगी और ऊँचा उठाने वाला नहीं जितना

उपनिषदों का साहित्य है। इसने मेरे जीवन काल में मुझे शान्ति और सान्त्वना दी है और यह मरने पर भी मुझे शान्ति देगा !' उपनिषदों की शिक्षाएं ईश्वर के अस्तित्व की भावनाओं से लबालब भरी हुई हैं। परन्तु यह मूढ़मति कृष्णदत्त उन भावनाओं में भी भ्रम उत्पन्न करना चाहता है। बृहदारण्यकोपनिषद् के अध्याय 2 के तीसरे ब्राह्मण में ब्रह्मा को प्रकृति से पृथक् सिद्ध करने के लिये पहले प्रकृति का स्वरूप बतलाया गया है। वहां कहा गया है कि प्रकृति के दो रूप हैं—मूर्त और अमूर्त। मूर्त रूप में पृथ्वी, जल और अग्नि है और अमूर्त में वायु और आकाश हैं। इससे आगे ऋषि ने कहा—अर्थात् आदेशो नेति नेति? इससे आगे आत्मा का उपदेश है। वह न तो मूर्त है अर्थात् पृथ्वी, जल और अग्नि है और न वह अमूर्त अर्थात् आकाश और वायु है। वह प्रकृति के दोनों रूपों से पृथक् है। 'अथ नामधेयम्, सत्यस्य सत्यमिति।' वह सत्य का सत्य है अर्थात् वह सदा एक रूप रहता है, वह बदलता नहीं, जब कि प्रकृति के दोनों रूप बदलते रहते हैं।' यही बात बृहदारण्यक के अध्याय 4 के दूसरे ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने जनक से कही थी—'स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते, अशीर्यो न हि शीर्यते, असङ्गो न हि सज्यते।'' वह आत्मा नेति नेति कहा जाता है। क्योंकि वह पकड़ा नहीं जा सकता, उसका नाश नहीं होता, वह पाप में लिप्त नहीं होता, वह बन्धन में नहीं आता। इसलिये प्रकृति के गुणों से नहीं 'नहीं' कहने से उसे नेति नेति कहा।

''**तत्त्वाभ्यासात् नेति नेति त्यागात् विवेकसिद्धिः॥**'' सां० 3, 75

अर्थात् आत्मा के अस्तित्व का साक्षात्कार करने के अभ्यास से ये समस्त विकार आत्मा में नहीं हैं और इनका मूल कारण प्रकृति भी आत्मा नहीं है। इस भावना के साथ इनके त्याग से विवेक की सिद्धि होती है। आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व का साक्षात्कार हो जाना विवेक

है।'' इसलिये आत्मा और परमात्मा को निर्गुण कहा है, क्योंकि ये दोनों प्रकृति के दोनों रूपों से भिन्न हैं।

अब कृष्णदत्त के प्रवचन पुष्प 12 पृ० 13-14 को भी पढ़िये।

वह कहता है—

''कपिल जी ने जब विचारा कि मुझे तो संसार में दो ही वस्तुएँ प्रतीत होती हैं ज्ञान और प्रयत्न। दोनों के रूपों से यह संसार चल रहा है। अब तृतीय वस्तु ब्रह्म मुझे कोई प्रतीत नहीं होती। ब्रह्मा कोई वस्तु नहीं। जब कपिल जी ने यह विचारा तो कपिल जी के गुरु देव आ गये। गुरु जी ने कहा अरे ! गुरु जी शान्त मुद्रा में क्यों हो? उन्होंने कहा कि प्रभु मेरी तो तार्किक बुद्धि हो गई है और मैंने यह निश्चय किया है कि संसार में प्रभु नहीं है। यह तो केवल मानव के लिये एक उच्चारण के लिये है क्योंकि मुझे तो संसार में ज्ञान और प्रयत्न ही प्रतीत हो रहा है।.... उस समय ऋषि ने कहा कि अरे कपिल अब तुम तपस्या करो..... उसके पश्चात् उन्होंने तपस्या की और तपस्या करने के पश्चात् अन्त में कपिल जी ने नेति नेति कहा कि आगे वह अनुभव का विषय रह जाता है। लेखनी का विषय नहीं।'

कृष्णदत्त के इन प्रवचनों को पढ़कर एक लाल भुजक्कड़ की कहानी याद आती है। एक गाँव के लोग निपट मूर्ख थे, उसमें एक बड़ा गप्पी भी रहता था, लोग उसको बड़ा बुद्धिमान् समझते थे और उसी की बात को प्रमाण मानते थे। एक दिन रात के समय उस गाँव के पास से एक हाथी निकल गया, प्रातःकाल उस गाँव वालों ने हाथी के पैरों के चिन्हों को देखा परन्तु किसी की समझ में न आया कि ये चिन्ह कैसे हो गये? लाल मुजक्कड़ को वहाँ बुलाया गया तो उसने बड़े गर्व के साथ अपनी बुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा—

लाल भुजक्कड़ पूछिये और पूछिये नहीं कोय।

पैरों से पत्थर बाँधकर हिरना न कूदा होय।।

यही हालत कृष्णदत्त और उसके अन्धे अनुयाइयों की है इसके अनुयायी आँख बन्द करके कृष्णदत्त की हर बात को सत्यवचन महाराज कह देते है। क्योंकि वे समझ बैठे हैं कि यह तो लाखों वर्षों पहले का शृङ्गी ऋषि है। परन्तु इस प्रवचन से कृष्णदत्त के प्राचीन होने का भाण्डा फूट जाता है। क्योंकि कपिल मुनि के सम्बन्ध में अनीश्वरवादी होने की चर्चा तो आधुनिक काल की है। कपिल मुनि के अनीश्वर वादी होने की बात तो सबसे पहले बौद्धो ने चलाई उसके पश्चात् शंकराचार्य ने चलाई, क्योंकि शंकराचार्य केवल एक ब्रह्म की सत्ता को ही स्वीकार करते थे। वे ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या मानते थे वे कहते थे कि यह जीव और जगत् स्वप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप हो कर लीला कर रहा है परन्तु महर्षि कपिल तीन सत्ताओं को नित्य मानते थे—एक प्रकृति जो जगत् का उपादान कारण है। दूसरा जीवात्मा जो सुख दुःखादि का भोक्ता है। और तीसरा परमात्मा जो जगत् का कर्ता अर्थात् निमित्त कारण है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार महर्षि कपिल जड़ और चेतन के भेद से दो सत्ताऐं नित्य मानते हैं—जड़ सत्ता को प्रकृति का नाम दिया है और चेतन सत्ता को पुरुष का नाम दिया है। पुरुष के भी दो भेद किये—जीव पुरुष और परम पुरुष। जीव पुरुष बहुत हैं और परम पुरुष एक ही है। इन दो सत्ताओं के योग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। महर्षि कपिल ने अपने सांख्य दर्शन के 6 अध्यायों में इस सिद्धान्त का बड़ी ऊहा पोह के साथ वर्णन किया है। सांख्य दर्शन के 5वें अध्याय के 68 सूत्र में लिखा है—

"**प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम्**।। सा० 5।68

अर्थात् प्रकृति और पुरुष से अन्य सब कुछ अनित्य है।

https://t.me/AryavartPustakalay

स्वामी शंकराचार्य का मत कपिल ऋषि के मत के विरुद्ध था, क्योंकि कपिल मुनि तो जड़ और चेतन दोनों को नित्य मानते थे, इनमें से 'जड़ प्रकृति जगत् का उपादान कारण और चेतन निमित कारण अर्थात् कर्त्ता' मानते थे और शंकराचार्य केवल चेतन ब्रह्म को ही जगत् का उपादान और निमित्त (दोनों) कारण मानते थे। इसलिये स्वामी शंकराचार्य ने सांख्य शास्त्र का खण्डन किया और महर्षि कपिल को अनीश्वर वादी प्रसिद्ध किया और आजकल अधिक साधु संन्यासी शंकर स्वामी के नवीन वेदान्त के गीत गाते फिरते हैं और अपने आपको ब्रह्म कहते हैं 'अहं ब्रह्मास्मि' की रट लगाते हैं। वे कहते हैं कि जो कुछ भी दिखाई देता है वह सब ब्रह्म है। वे लोग कपिल मुनि को नास्तिक कहकर उनकी निन्दा करते हैं। उन्हीं लोगों की बातें सुनसुनाकर कृष्णदत्त अपनी मूढ़ता में आकर बड़बड़ाता है कि 'कपिल जी ईश्वर या ब्रह्म को नहीं मानता था।' यदि कृष्णदत्त के अन्दर से वाल्मीकि ऋषि के काल का ऋष्य शृङ्ग बोलता तो वह कपिल के सम्बन्ध में इतनी झूठी बात न कहता, क्योंकि वैदिक काल से लेकर स्वामी शंकराचार्य के उत्पत्ति काल तक किसी भी ऋषि ने या किसी वैदिक विद्वान् ने महर्षि कपिल को नास्तिक नहीं कहा। वेदों के अतिरिक्त जितना भी वैदिक साहित्य है उस पर महर्षि कपिल के सिद्धान्तों की छाप है। वह साहित्य चाहे ब्राह्मणग्रन्थ हों, आरण्यक हों, उपनिषद् हों, आयुर्वेद के ग्रन्थ हों, रामायण, महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थ हों, यहाँ तक कि गीता में भी महामुनि कपिल सिद्धान्तों का बड़े आदर के साथ प्रतिपादन किया गया है। गीता में तो आधे से भी अधिक उपदेश सांख्य के आधार पर किये गये हैं। महाराज कृष्ण ने गीता के 10-11 अध्याय में ईश्वर की विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है कि 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' अर्थात् सिद्ध पुरुषों में कपिल मुनि सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ऋषि ने परमात्मा की कृपाओं का वर्णन करते हुए कहा है—

https://t.me/AryavartPustakalay

ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तदग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानं च पश्येत्।

जिस ईश्वर ने पूर्वकाल में ऋषि कपिल को उत्पन्न होते ही अर्थात् अत्यन्त बाल्यावस्था में ही ज्ञान से भरपूर कर दिया था, उस प्रकट ईश्वर को ध्यान से देखो।' ऐसे परमऋषि और जन्म से सिद्ध योगी कपिल को यह मूढ़ व्यक्ति सुनी सुनाई बातों के आधार पर यह कहें कि कपिल जी तो ईश्वर को नहीं मानते थे, तो बड़े दु:ख की बात है। कपिल आचार्य ने सांख्य दर्शन में ईश्वर के सम्बन्ध में कहा है—

अकार्यत्वेऽपि तद्योग: पारवश्यात्।।

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता।।

ईदृगीश्वरसिद्धि: सिद्धा।। सां० 3.55, 56, 57

अर्थात् यद्यपि यह जगत् ईश्वर का कार्य नहीं है तथापि ईश्वर के योग के बिना इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर इस प्रकृति का अधिष्ठाता है। यह ईश्वर निश्चय से सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्व कर्त्ता है। इस प्रकार के ईश्वर की सिद्धि इस शास्त्र से सिद्ध है जो जगत् का उपादान कारण नहीं अपितु जगत् का बनाने वाला कर्त्ता रूप है (जैसे कुम्हार उपादान मिट्टी से बर्तन बनाता है वह स्वयं अपने शरीर में से बर्तन नहीं बनाता)।

कपिल जी पाँचवे अध्याय में कहते हैं कि—

"सत्तामात्राच्चेत् सर्वमैश्वर्यम्। सां० 5.9

यदि ऐसा माना जाये कि ईश्वर ने अपने में से ही सृष्टि बनादी तो सब वस्तुएँ ईश्वर के समान चेतन हो जावें, परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता अत: यही सिद्ध होता है कि ईश्वर ने इस जगत् को जड़ प्रकृति से बनाया है न कि अपने अन्दर से।

प्रकृतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य।। सां० 5.12

https://t.me/AryavartPustakalay

वेद भी जगत् को प्रधान (प्रकृति) का कार्य बतलाता है। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कपिल देव ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते थे, परन्तु वे ईश्वर को जगत् का नियन्ता अधिष्ठाता और कर्ता मानते थे। यही सिद्धान्त वेदों का है और यही सिद्धान्त उपनिषदों का, षड्दर्शनों का और गीता और अध्यात्म ग्रन्थों का भी है। यदि प्रकृति को जगत् का उपादान मानने से कपिलदेव अनीश्वर वादी माने जावें तो वेदादि शास्त्र अनीश्वर वादी ठहरते हैं। अत: कृष्णदत्त का कपिल को अनीश्वर वादी कहना एक पागल की बड़बड़ाहट ही कही जा सकती हैं, ऋषिदयानन्द ने लिखा है कि जो कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है वह स्वयं अनीश्वर वादी है कपिलाचार्य नहीं। अत: कृष्णदत्त और उसके अनुयायी स्वयं नास्तिक हैं। कपिलदेव ने ईश्वर के सम्बन्ध में जो "तत्त्वाभ्यासात् नेति नेति त्यागात् विवेकसिद्धिः।" सूत्र कहा है, इसमें से किसी उपदेशक के मुख से केवल 'नेति नेति' शब्दों को सुनकर कृष्णदत्त ने अपने आपको शृङ्गी मान लिया और कपिल के सम्बन्ध में यह बड़ हांक दी कि आगे यह अनुभव का विषय रह जाता है। लेखनी का विषय नहीं? मैं निश्चय से कहता हूँ कि कृष्णदत्त को या उसके कल्पित शृङ्गी ऋषि को कपिल के सिद्धान्तों का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है वह व्यर्थ में उसमें अपनी टाँग अड़ाता है। कपिल ने स्पष्ट कहा है कि आत्मा के (जीवात्मा और परमात्मा) अस्तित्व का साक्षात्कार करने के अभ्यास से तथा इस भावना से कि कारण रूप प्रकृति और कार्य रूप नहीं है आत्मा इन दोनों से पृथक् है, इनका त्याग करने से जीवात्मा प्रकृति ये दोनों आत्मा और परमात्मा का साक्षात् ज्ञान हो सकता है? बृहदारण्यक उपनिषद् में 'नेति नेति' का प्रकरण तीन बार आया है। कृष्णदत्त ने कपिल के सम्बन्ध में यह भी झूठ कहा है कि कपिल जी ने यह विचारा कि मुझे तो संसार में दो ही वस्तु प्रतीत होती हैं—ज्ञान और प्रयत्न और दोनों के रूपों में

संसार चल रहा है? सांख्य शास्त्र का जिसको थोड़ा सा भी ज्ञान है वह जानता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कपिल के सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति और पुरुष इन दोनों के योग से होती है? कृष्णदत्त ने किसी उपदेशक के वचन में सुन लिया होगा कि ज्ञान और प्रयत्न ये दो आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। बस फिर तो चूहे को हल्दी की गाँठ मिल गई और इसी से वह पंसारी बन बैठा? कृष्णदत्त के इस प्रकार प्रवचन के तीन कारण हो सकते हैं—

(1) कपिल मुनि को नास्तिक कहकर उसको अपमानित करना।

(2) नवयुवकों और नवयुवतियों को कपिल का प्रमाण देकर नास्तिक बनाना।

(3) मूढ़ावस्था में व्यर्थ बड़ बड़ाना।

परम विदुषी माता गार्गी का वर्णन

प्राचीन भारत के इतिहास में विदुषी स्त्रियों में माता गार्गी का स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है। महर्षि दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में तीन स्थलों में उसका प्रमाण रूप से वर्णन किया है।

(1) प्राचीन काल में स्त्रियों के ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ़ने पढ़ाने के अधिकार के सम्बन्ध में लिखा है—"भारत वर्ष की स्त्रियों में भूषण रूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थी।" सत्या० समु० 3

(2) स्त्रियों के संन्यास के सम्बन्ध में—इसी प्रकार जिस स्त्री व पुरुष को विद्या धर्म—वृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जैसे पच्चशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियाँ हुई थीं। इसलिये संन्यासी का होना अधिकारियों को उचित है। स० स० 7

(3) स्त्रियों के वेद पढ़ने के सम्बन्ध में—"वेद पढ़ने का अधिकार सबका है। देखो ! गार्गी आदि स्त्रियों ने वेद पढ़ा था। इससे पता चलता है कि गार्गी ने ब्रह्मचर्य पूर्वक सब वेदादि शास्त्रों को पूर्ण रूप से पढ़कर पूर्ण वैदुष्य प्राप्त किया था और संसार के उपकार के लिये आयु भर ब्रह्मचारिणी रहकर संन्यासाश्रम को ग्रहण किया था। उनकी विद्वत्ता का पता बृहदारण्यकोपनिषद् के तृतीय अध्याय की कथा से चलता है, वहाँ लिखा है—"राजा जनक को यह जानने की इच्छा हुई कि कुरु और पञ्चाल देश से आये हुए इन ब्राह्मणों में सबसे बड़ा अनूचान (वेद का वक्ता) कौन है? उसने एक सहस्र गउओं को सींगों में दस दस स्वर्णपाद लगाकर खड़ा कर दिया और पण्डितों से कहा जो आप में सबसे ब्रह्मनिष्ठ हो, वह उनको ले ले। किसी का साहस नहीं हुआ। याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा—इन गउओं को हाँक ले जा। याज्ञवल्क्य के इतना कहने पर खलबली मच गई। सभी ने ललकारा। शास्त्रार्थ छिड़ गया। शास्त्रार्थ करने वालों में उद्दालक जैसे बड़े-बड़े आठ विद्वान् थे उनमें वचक्नु मुनि की पुत्री गार्गी भी थी, उसने पहले शास्त्रार्थ में हार स्वीकार करके दूसरी बार प्रश्न करते हुए कहा—ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि। तौ चेन्मे वक्ष्यति न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यतं जेतेति। हे पूज्य ब्राह्मणो ! अब मैं इस याज्ञवल्क्य को दो प्रश्न पूछूंगी। यदि वह दोनों उत्तर मुझे कह देगा तो तुम्हारे में कोई भी पण्डित इस ब्रह्मज्ञानी की कभी जीत नहीं सकता। गार्गी ने अपने प्रश्नों को आरम्भ किया। गार्गी के प्रश्न गूढ़ थे और आध्यात्मिक जिज्ञासा से लबालब भरे थे। परन्तु याज्ञवल्क्य ने उन सब के उत्तर देकर गार्गी को सन्तुष्ट कर दिया। गार्गी ने सब ब्राह्मणों को सम्बोधित करते हुए कहा—

https://t.me/AryavartPustakalay

"ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहुमन्येध्वम्, यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वम्, न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति। ततो ह वाचक्नव्युपरराम।"

हे पूजनीय ब्राह्मणो ! यदि नमस्कार करने से इस याज्ञवल्क्य से तुम छूट जाओ पराजय से बच जाओ तो इसी को बहुत मानो। इसका ज्ञान अगाध है। तुम में इस ब्रह्मवेत्ता को कोई भी नहीं जीत सकेगा। तत्पश्चात् वचक्नु की पुत्री गार्गी चुप हो गई।" उपनिषद् के इस सन्दर्भ को पढ़ने से गार्गी के वचनों में कितनी शालीनता, सज्जनता, सोम्यता, सत्यता और दृढ़ता भरी हुई है, ये देखकर हृदय गद्‌गद हो जाता है। बड़े बड़े विद्वान् लोग भी अपने प्रतिद्वन्द्वी की सच्ची बात को समझते हुए भी दुराग्रह के कारण खुले हृदय से अपनी हार स्वीकार नहीं करते, परन्तु माता गार्गी ने कितने खुले हुये और पवित्र हृदय से याज्ञवल्क्य के सामने अपनी हार स्वीकार की और उसके अगाध ज्ञान की प्रशंसा की।

परन्तु कृष्णदत्त को माता गार्गी के इन अनुपम गुणों में से एक भी गुण पसन्द नहीं आया। न उसको जनक की सभा के शास्त्रार्थ अच्छे लगे, न गार्गी के वेदज्ञान की गहराई उसको पसन्द आई। कृष्णदत्त को क्या पसन्द आया? इसको कृष्णदत्त की जवानी सुनिये—

"मुझे तो माता गार्गी का जीवन भी स्मरण है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो ब्रह्मदेवता आदियों को जानते हैं उनका जीवन कितना सौन्दर्य में परिणत रहता था। एक समय माता गार्गी भयंकर वनों से सभा में आई तो नग्न आई तो उस समय जनक जी ने कहा कि तुम मेरी सभा में नग्न आ रही हो तुम्हें शर्म नहीं आती। तो उस समय उन्होंने कहा था कि हे राजा ! क्या तू राजा है? तुम्हें आत्मा का ज्ञान नहीं है? संसार में नग्न कौन होता है। नग्न वह होता है जो ज्ञान से शून्य होता है, नग्न वह होता है

जिसके द्वारा शब्दों का ज्ञान और अभिमान होता है। वह संसार में नग्न होता है। वह नग्न नहीं होता जिसके द्वारा त्याग तपस्या होती है।"

कृष्णदत्त ने जिस गार्गी का वर्णन किया है वह गार्गी उस गार्गी से सर्वथा भिन्न है जिसका मैंने उपनिषद् के आधार पर वर्णन किया है। कृष्णदत्त किसी निर्लज्ज, उद्धत और ताड़का जैसी स्त्री को गार्गी का नाम दे रहा है जिसको सभाओं में आने जाने, उठने बैठने और सभा में आये हुये सभ्य पुरुषों के साथ यथायोग्य व्यवहार करने की भी बुद्धि नहीं। उपनिषद् में वर्णित गार्गी वेद विद्या में पारंगत थी, वह जानती थी कि किसी मनुष्य का नग्न रहना अज्ञानता का चिन्ह है। मनुष्येतर सब प्राणी नग्न रहते हैं, इसलिये उनको त्यागी या तपस्वी नहीं कहा जा सकता ! उनको तो अज्ञानी या निर्बुद्धि ही कहा जा सकता है। जो पशुओं की नकल करता है उसको कोरा पशु ही कहा जाता है। मनुष्य का बालक भी तब तक पशु के समान हीहोता है जब तक उसको भक्ष्याभक्ष्य का अपने शरीर की रक्षा के साधनों का मूल-मूत्र त्यागने का बोध नहीं होता। वैदिक धर्म के अनुसार 5, 6 वर्ष की आयु में बालक पशुता से ऊँचा उठना प्रारम्भ कर देता है। इसलिये उस आयु में बालक का उपनयन संस्कार के समय नियमित रूप से वस्त्र धारण करने की शिक्षा दी जाती है। इस नियम का आयुभर पालन करना प्रत्येक मनुष्य के लिये अनिवार्य होता है। जो इस नियम को भंग करता या कराता है उसको समाज की ओर से या राज्य की ओर से कठोर दण्ड मिलता है। यह तो सभी जानते हैं कि भीम ने दु:शासन को द्रौपदी को नग्न करने का कितना बड़ा दण्ड दिया था? सभी सभ्य जातियों में किसी भी स्त्री या पुरुष का सार्वजनिक रूप में नग्न रहना बड़ा भारी अपराध माना गया है। हाँ ! बालकपने या पागलपन में नग्न रहने पर कोई दण्ड नहीं।

सामाजिक व्यवस्था के अनुसार तो मुर्दा शरीर को भी नग्न नहीं रक्खा जाता। इसलिये कृष्णदत्त का गार्गी का नग्नावस्था में जनक की सभा में जाने का वर्णन करना अत्यन्त लज्जा और शरारत की बात है। इस प्रकार की बात और युक्तियाँ तो सरभंगी और ओघड़ लोग ही कहा करते हैं। ये लोग नग्न रहने में, अपने ही मल-मूत्र खाने में, चिता के अन्दर से मुर्दे को निकालर खाने पीने में, शराब के प्याले पर प्याले पीने में तथा किसी भी स्त्री के साथ भोग करने में कोई पाप नहीं समझते। ऐसे लोगों का कथन है—"पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः (ज्ञानसंकलनी तन्त्र)

ऐसा तन्त्र में कहते हैं कि जो लोक-लज्जा, शास्त्र-लज्जा, कुललज्जा देश-लज्जा आदि पाशों में बन्धा है वह जीव और निर्लज्ज होकर बुरे काम करे वही सदा शिव।" इसी से मिलती जुलती कथाओं से भरा हुआ कृष्णदत्त का प्रवचन पुष्प 13 है जिसमें अश्वपति के दृष्टि यज्ञ की कथा है। इसको देखिये।

महाराजा अश्वपति के वृष्टि यज्ञ का वर्णन

13वें पुष्प में पृ० 47 से 86 पृ० तक महाराजा अश्वपति के वृष्टि यज्ञ का वर्णन' के शीर्षक से 40 पृष्ट काले किये हैं। परन्तु उसमें यह कहीं नहीं लिखा कि उसकी विधि क्या थी? सामग्री कितनी थी, उसमें कौन कौन सी औषधियाँ थी, कितनी आहुतियाँ डाली गई। यज्ञ कुण्ड किस प्रकार का था, कितना बड़ा था, घृत की मात्रा कितनी थी, किस किस वेद के कौन कौन से सूक्त थे, समिधा किस प्रकार की थी? ऋतु कौन सा था? कौन सा नक्षत्र और कौन सा मास था? क्योंकि विधि पूर्वक किया हुआ यज्ञ ही फल का देने वाला होता है। उपर्युक्त साधनों का वर्णन करना अत्यन्त आवश्यक है। उन साध्नों को बतलाने में ही

जनता का लाभ हो सकता है। इन बातों को छोड़कर इधर उधर की बातों में समय खोना बकवास के अतिरिक्त कुछ नहीं ! कृष्णदत्त के इस प्रवचन में खोदा पहाड़ निकला चूहा, वह भी मरा हुआ। इसके 6 पृष्ठों में तो अपनी बुरी अवस्था का वर्णन है। 13 पृष्ठों में अपनी 8 वर्ष की कन्या के साथ सम्वाद है। वह सम्वाद क्या था? वह भी सुन लीजिये—

"मैने आपसे गृह आश्रम के सम्बन्ध में जाना, प्रश्न किये, उन प्रश्न के उत्तर में आठ वर्ष की कन्या ने एक प्रश्न किया था, वह मुझे आज तक स्मरण है....... उस समय कहा था कि हे भगवन् ! मैं यह जानना चाहती हूँ कि वास्तव में मैं गृहस्थाश्रम में तो जाना नहीं चाहती, परन्तु मुझे यह अवसर प्राप्त हो जाये कि मैं गृह आश्रम में प्रविष्ट हो जाऊँ तो प्रभु ! मुझे कैसी सन्तान को जन्म देना चाहिये? .... हे प्रभु ! यदि मेरी मूढ़मति हो जाये। आपने जैसा कहा है कि गृहाश्रम का जो विज्ञान है मानो यदि मेरे गर्भ स्थल में 11वीं रात्रि में मेरे गर्भ की स्थापना प्रतीत हो जाये तो मेरे गर्भाशय को उत्तम स्थान बनाने के लिये आपके पास कोई औषध है? या इसके लिए कोई औषध भी नहीं?" जरा पाठक भी ध्यान दें कि एक ऋषि (जिसको आजन्म ब्रह्मचारी कहा जाता है) की कन्या जिसकी आयु केवल 8 वर्ष की है अपने पिता से कितनी निर्लज्जता की बातें कर रही है। जरा ऋषि का उत्तर भी सुन लीजिये ! शृङ्गी जी कहते है—

'जब रात्री का चतुर्थ भाग रह जाता है उस समय मानो कृतिका नक्षत्र भी अस्त हो जाता है। उस कृतिका नक्षत्र के अस्त हो जाने के पश्चात् उस समय ज्येष्टाय नक्षत्र की प्रतिमा आती है। ज्येष्टाय नक्षत्र की प्रतिमा आ जाने के पश्चात् प्रतिबोध होता है और सूर्य उदय होने से पूर्व भंयकर वन में जाओ, मार्ग में चले जाओ और वहाँ जाकर के देखो

शंखा होली औषधी होती है, एक शंखा मृघी और एक अनदेतना इन तीन औषधियों का सोमरस बनाकर के प्रातः सूर्य की किरण के साथ उसका पान कर लेना चाहिये ! उसके पान करने से गर्भाशय में जो एक अंकुर है और उसकी जो आकृति है वह उसकी कृतिका में उसकी सोमता के प्रति आकृति हो जायेगी।''

मैं 'वैदिक अनुसन्धान समिति' के अधिकारियों से पूछता हूँ कि उन्होंने पिता और पुत्री के इस निर्लज्जता से भरे सम्वाद को अच्छी प्रकार पढ़कर समझ लिया है। या नहीं? और यदि समझ लिया है, तो अपनी पुत्रियों पर इसका प्रयोग किया है या नहीं? यदि प्रयोग नहीं किया तो इस वाम मार्ग को भोली भाली जनता में क्यों फैलाते हो? क्या आपने किसी ज्योतिर्विद से पूछा है कि 'कृतिका' नक्षत्र के पश्चात् कौनसा नक्षत्र आता है? तुम्हारे शृङ्गी ऋषि कहते हैं कि 'कृतिका' नक्षत्र के पश्चात् ज्येष्ठाय नक्षत्र आता है। यह सर्वथा झूठ है। कृतिका और ज्येष्ठा नक्षत्र के बीच में तो 14 नक्षत्र हैं। अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के सातवें सूक्त में 27 नक्षत्रों का वर्णन है। उनमें नं० 1 कृतिका है और नं० 16 ज्येष्ठा नक्षत्र है। पंचांगों में भी यही क्रम है। इसी प्रसंग में ऋषि जी अपनी पुत्री को गृहस्थाश्रम का उपदेश करते हुए कहते हैं 'हे पुत्री ! संसार में जो सुयोग्य पत्नी होती है वह घोषणा करके पति को कह दे कि मैं तुम्हारी वास्तव में अधिक से अधिक एक सहस्त्र जो त्रुटियां हैं उन्हें क्षमा कर सकती हूँ और यदि उससे अधिक हो जायें तो मेरी मृत्यु आ जानी चाहिये.... जैसे भगवान् कृष्ण ने शिशुपाल की एक सौ एक अशुद्धियाँ समाप्त कर दी थी, क्षमा कर दिया था।'' कृष्णदत्त के इस झूठ पर विचार कीजिये कि वह अपनी पुत्री को जो उपदेश कर रहे थे, वह त्रेता युग में था जिस को कई लाख वर्ष हो गये, परन्तु उस उपदेश

में उदाहरण भगवान् कृष्ण और शिशुपाल का दे रहे थे जो द्वापर युग में हुये और जिनको लगभग 5 हजार वर्ष हुये हैं। यह मूर्खता और झूठ का सम्मिश्रण है।

कृष्णदत्त ने पिता पुत्री के सम्वाद के पश्चात् अश्वपति के यज्ञ का नाम लेकर फिर पिता पुत्री का प्रकरण छेड़ दिया, परन्तु इसमें पुत्री की आयु 5 वर्ष बतलाई है। अश्वपति के यज्ञ का ब्रह्मा शृङ्गी ऋषि बना और अध्वर्यु उसकी 5 वर्ष की कन्या (ये दोनों पिता और पुत्री सर्वथा नंगधडंग) और उद्गाता चाकरायण ऋषि बना, वर्षेष्टि यज्ञ था। उस में शाकल्य क्या डाला गया? यह भी सुन लीजिये—'मुनिवरो ! देखो ! संकल्प मात्र से ही जब वृष्टि का आरम्भ होने लगता है, यज्ञ में शाकल्य बनाये जाते हैं, वाहरिय शाकल्य और आन्तरिक शाकल्य दोनों का समन्वय होकर के ही संसार में प्रभु की चेतना और संकलता जागरूक हो जाती है। जागरूक हो जाने के पश्चात् वृष्टि होने लगी।''

पाठकों की सेवा में निवेदन है कि वर्षेष्टि यज्ञ भौतिक विज्ञान की एक प्रक्रिया है। वह एक द्रव्यमय यज्ञ है। पदार्थ विज्ञान के ज्ञाता इस प्रकार के द्रव्यों का संग्रह करते हैं जिनके संयोग से अन्तरिक्षस्थ वायु में ठहरे हुये जलकणों का समूह जो वाष्प में बिखरे हुए वे संहत होकर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आ जाते हैं। उन द्रव्यों को अन्तरिक्षस्थ वाष्प के साथ संयुक्त करने का सर्वोत्तम साधन अग्निहोत्र है। इसलिये वर्षेष्टि यज्ञ में उस प्रकार के द्रव्यों का संग्रह करना मुख्य कार्य है। संकल्प मात्र से तो एक बूँद भी न गिरेगी ! इस वर्षेष्टि यज्ञ में कृष्णदत्त के शृङ्गी ऋषि ने मुख्य साधन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। हाँ ! दक्षिणा के विवाद पर 12 पृष्ठ काले कर दिये। वास्तविकता यह है कि अश्वपति का इस प्रकार का यज्ञ कभी हुआ ही नहीं था। कृष्णदत्त ने इस

कपोलकल्पित यज्ञ के ऋत्विजों के नाम उपनिषदों के इधर उधर के सम्वादों में से लेकर रख दिये, उषस्ति चाक्रायण का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् के प्रपाठक 1 खण्ड 11 में आता है। जिसमें कुरुदेश के राजा ने चाक्रायण को यज्ञ का अधिष्ठाता बनाया था, उसमें चाक्रायण ने दूसरे ऋत्विजों से कुछ प्रश्न किये थे, कृष्णदत्त ने उसी चाक्रायण को अश्वपति के काल्पनिक यज्ञ का उद्गाता बना दिया और उन ही प्रश्नोत्तरों को तोड़ मरोड़कर अपने प्रवचन में कह डाला। बृहदारण्यक अध्याय 3 में विदग्ध ने याज्ञवल्क्य से पूछा था—'देवता कितने हैं?' उसका जो उत्तर याज्ञवल्क्य ने दिया वह प्रश्नोत्तर रूप में कृष्णदत्त ने अपने प्रवचन में जमदग्नि और आर्धभाग के नाम से कह डाला, आर्त्तभाग का वर्णन भी बृहदारण्यक प्रपा० 3 ब्राह्मण 2 में आता है, उसमें भी आर्त्तभाग को आर्धभाग लिख दिया और विदग्ध को दिग्ध कह डाला। इस प्रकार से उपनिषदों की पवित्र आध्यात्मिक शिक्षाओं को तोड़ मरोड़कर अश्लील और घृणित बना दिया जिन बातों से जनता का लाभ हो सकता है उनको ही कहना उचित होता है। व्यर्थ प्रलाप से सिवाय हानि के कुछ हाथ नहीं लगता। यदि 'वैदिक अनुसन्धान समिति' वालों का कृष्णदत्त के ऋषि और योगी होने पर पूर्ण विश्वास है और वृष्टि यज्ञ के लिये वह कई युगों से प्रमाणिक माना जाता रहा है तो आजकल उससे वर्षा क्यों नहीं करा ली जाती? जिससे भारतवर्ष की खाद्य समस्या तो दूर हो जाती?

'करनी बिन कथनी कथे अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूषत फिरे सुनी सुनाई बात॥'

'वैदिक अनुसन्धान समिति' ने कृष्णदत्त के प्रवचनों को छपाकर उपनिषदों के गौरव को नष्ट करने का ही दुःसाहस किया है, जो शोभनीय नहीं है।

कृष्णदत्त का एक और बड़ा झूठ 'वृक्षों में जीव नहीं''

कृष्णदत्त ने झूठ का जो तूफान चलाया है उसमें एक लहर यह भी है—

'मुनिवरों ! परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में स्थावर, जंगम, अण्डज और उद्‌भज्ज चार प्रकार की सृष्टि बनाई थी। जंगम को जरायुज भी कहते हैं। अब हमें विचारना चाहिये कि वृक्ष योनि में आत्मा है या नहीं? यदि आत्मा वृक्ष योनि को प्राप्त कर लेता है तो आत्मा का लक्षण क्या होगा? ये सब विचार हमारे समक्ष आ रहे हैं।

एक समय त्रेता युग में महर्षि वसिष्ठ के द्वार पर सब आचार्य आए। आदि गुरु ब्रह्मा के साथ विभाण्डक मुनि, लोमश मुनि तत्बेतु मुनि, महर्षि भृगु, दृन्दि ऋषि, पारा मुनि शिव, सनत्कुमार, मारकण्डेय, महर्षि याज्ञवल्क्य और सन्तुति आदि ऋषियों का दार्शनिक समाज विराजमान हो गया। वहां नाना प्रकार की विचार धाराएं चलने लगीं। प्रश्नोत्तर होने लगे।

दार्शनिकों के समक्ष विचार था कि वृक्षों में आत्मा है कि नहीं, पृथ्वी और जलादि के संयोग से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों में आत्मा है या नहीं? और आत्मा का क्या लक्षण है?

मुनिवरो ! इस विषय पर पर्याप्त गहन विचार करके दार्शनिकों ने परामर्श पूर्वक निर्णय दिया कि "हमारे विचार में तो वृक्षों एवं वनस्पतियों में आत्मा नहीं होता।"

वे वृक्ष एवं वनस्पतियां तो प्रकृति की सामान्यता से बने हुए है। देखों सामान्य प्राण इनमें विद्यमान हैं। सामान्य प्राण इनको ऊंचा बना रहा है। सामान्य प्राण ही इनमें प्रविष्ट हो रहा है। इसी सामान्य प्राण की शक्ति

के द्वारा ही वृक्षों या वनस्पतियों में घटने बढ़ने की क्रिया एवं सत्ता विराजमान है।"

'आत्मा का लक्षण तो ज्ञान और प्रयत्न है। वृक्षों या वनस्पतियों में दोनों लक्षण नहीं घटते। इसलिये इनमें आत्मा कदापि नहीं माना जायेगा।'

कृष्णदत्त के इस प्रवचन से उसकी अज्ञानता, झूठ, चोरी और पाखंड का पूरी रीति से भाण्डा फूट जाता है—पहले तो उसका यह कहना कि परमात्मा ने सृष्टि चार प्रकार की बनाई, उसकी अज्ञानता को प्रकट करता है, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि दो ही प्रकार की है—स्थावर और जंगम। इनके पर्यायवाची शब्द हैं—जड़ और चेतन या प्राणी और अप्राणी या अचर और चर। फिर प्राणियों के चार भेद हैं—जेरज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। परन्तु कृष्णदत्त का अपना कोई ज्ञान तो है नहीं किसी उपदेशक से सुनी सुनाई बात 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' इकट्ठा करके मूर्खों को धोखे में डालने के लिये शृङ्गी ऋषि का नाम ले दिया। सुनो ! वेद क्या कहता है—

"ततो विश्वङ् व्यक्रामत् 'साशनानशने अभि!"

(यजुर्वेद अ० 21 मंत्र है)

अर्थात् उस परमात्मा के सामर्थ्य से यह सब संसार उत्पन्न होता है। कौन-कौन सा? एक वह जो भोजन करता है, जिसे जंगम' जीव चेतनादि से युक्त जगत् कहते हैं, और दूसरा वह जो भोजन नहीं करता जैसे 'पृथिव्यादि' जड़ जो कि जीव के सम्बन्ध में रहित जगत् है। यह दोनों प्रकार का जगत् पुरुष (परमात्मा) के सामर्थ्य से उत्पन्न होता है।''

अब जंगम सृष्टि जो चेतनादि से युक्त और भोजन करता है वह चार प्रकार का है। (1) 'जेरज' जो जेर से निकलते हैं—मनुष्य और गो आदि पशु, (2) अण्डज—जो अण्डे से निकलते है पक्षि आदि, (3) स्वेदज जो पसीने आदि से उत्पन्न होते हैं जैसे खटमल, जूँ पिस्सू आदि (4) उद्भिज्ज जो पृथ्वी को फोड़कर निकलने वाले वृक्ष, गुल्मलता आदि परन्तु कृष्णदत्त ने अपनी अनभिज्ञता के कारण कह डाला कि 'जंगम को जरायुज भी कहते हैं। भाई! जंगम तो चार प्रकार का है न कि केवल जरायुज ही जंगम कहलाता है। इसमें भी प्रमाण लीजिये-''अण्डजानि जारुजानि, च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि, अर्थात् अण्डज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज्ज ये सब प्रज्ञा नेतृ हैं (ऐतरेय उपनिषद् 1।3) अपनी अनभिज्ञता पर पर्दा डालने के लिये कृष्णदत्त ने एक काल्पनिक कथा छेड़ी है कि एक समय त्रेता युग में वसिष्ठ ऋषि के द्वार पर सब आचार्य आये। कृष्णदत्त का इस प्रकार की किसी सभा का वर्णन सर्वथा झूठ है क्योंकि पहली बात तो यह है कि इस सम्मेलन में जिन व्यक्तियों का आना लिखा है, वे सब त्रेता युग में नहीं थे—पारा मुनि (पराशर) (कृष्णदत्त सब जगह पराशर को पारा मुनि कहता है) पारा मुनि द्वापर के अन्त में हुये, वे उत्पन्न होने से 5, 10 लाख वर्ष पहले त्रेता युग के सम्मेलन में कैसे जा सकते थे? आदि गुरु ब्रह्मा सृष्टि के आदि में

करोड़ों वर्ष पीछे के सम्मेलन में उनका उपस्थित होना कोरा झूठ है। सनत्कुमार भी सतयुग में हुये थे, वसिष्ठ के द्वार पर कैसे जा सकते थे !

दूसरी बात यह है कि प्राचीन काल के ऋषियों के वाद विवाद की यह प्रणाली नहीं थी जिसका वर्णन कृष्णदत्त ने किया है, प्राचीन काल के ऋषि किसी तत्त्वार्थ पर निर्णय करने के लिये वेद के प्रमाण को सर्वोपरि मानते थे। वेद के विरुद्ध वे किसी तर्क को स्वीकार नहीं करते थे, बल्कि ऐसे व्यक्ति को नास्तिक मानते थे जो अपने तर्क के बल पर श्रुति और स्मृति की अवहेलना करता था। हमारे छः शास्त्रों के कर्त्ताओं—कपिल, गौतम, कणाद, पतञ्जलि, व्यास और जैमिनि आदि ने वेद के प्रमाण को स्वतः प्रमाण माना था और शेष सब शास्त्रों के प्रमाणों को परतः प्रमाण माना था। सारे उपनिषदों में वेद वाक्यों को स्वतः प्रमाण माना गया है। यहाँ तक कि वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों में और चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी वेद को सर्वोपरि मानकर उनको अन्तिम प्रमाण माना है। और इस युग के महर्षि दयानन्द ने भी प्राचीन ऋषियों की परम्परा को ही स्थापित किया है।

भगवान् मनु ने मनु स्मृति के दूसरे अध्याय में सम्पूर्ण वेद को धर्म का मूल बतलाते हुये कहा—

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः

स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः॥ मनु 2।11

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः॥ मनु० 12।106॥

https://t.me/AryavartPustakalay

जो द्विज धर्म के मूल वेद और वेदानुकूल स्मृति का अपने तर्क के आश्रय से अपमान करता है वह वेद का निन्दक होने से नास्तिक है। इसलिये सज्जन पुरुषों को उसका बहिष्कार कर देना चाहिये। जो मनुष्य ऋषियों की बातों को तथा स्मृतियों के उपदेश को वेदानुकूल तर्क से अच्छी प्रकार से जाँचता है। वह धर्म के तत्त्व को जान सकता है, दूसरा नहीं। कृष्णदत्त ने त्रेता युग में जिन ऋषियों का सम्मेलन कहा है, वह सर्वथा काल्पनिक और झूठा है क्योंकि इस सम्मेलन में वेद का नाम तक भी कहीं नहीं लिया गया। ऐसा सम्मेलन नास्तिकों का सम्म्लेन हो सकता है, वेदानुयायी ऋषियों का कदापि नहीं हो सकता ! सृष्टि के आरम्भ से लेकर सन् 1900 ई० तक वैदिक आर्यों के साहित्य में वेदों से लेकर पुराणों में तथा हिन्दुओं के किसी और भाषा के ग्रन्थ में भी वृक्षों में जीव न होने का संकेत तक नहीं। मैं 'वैदिक अनुसन्धान समिति' के कर्णधारों को खुली चुनौति देता हूँ कि वे स्वामी दर्शनानन्द के पुस्तकों के छपने से पहले के किसी आर्य ग्रन्थ से प्रमाण दें कि अमुक ग्रन्थ में अमुक स्थान पर वृक्षों के अन्दर जीवात्मा का न होना स्वीकार किया गया है? कितने अन्याय की बात है कि एक प्रछन्न वेद विरोधी नास्तिक व्यक्ति ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, शिव, स्वायम्भुव मनु और याज्ञवल्क्य को भी अपनी नास्तिक पार्टी में सम्मिलित करना चाहता है। आदि ब्रह्मा का सम्बन्ध आयुर्वेद से विशेषता से जोड़ा जाता है। जब उसी अथर्ववेद में वृक्षों में जीव होने का कई स्थानों पर वर्णन आता है तो ब्रह्माजी उस का विरोध करके नास्तिक क्यों बनेगा? अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के अनुवाक 2 सूक्त 32 मन्त्र 1 में लिखा है।

"इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति न तत्पृथिव्यां नो दिवि।

येन प्राणन्ति वीरुधः"। इस मन्त्र में "येन प्राणन्ति वीरुधः" का अर्थ है जिससे (वीरुधः) लताएं, बेलें जीव को धारण करती हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वृक्षों में जीव है, क्योंकि वृक्ष भी वनस्पति जाति में सम्मिलित है।

अथर्व वेद काण्ड 8 अनुवाक 4 मन्त्र 6 में लिखा है—

"जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीम्।" इस मन्त्र में ओषधि का विशेषण 'जीवन्ती' स्पष्ट कहा गया है। इन दोनों मन्त्रों से वनस्पतियों में प्राण और जीव होना सिद्ध है। इसलिये कृष्णदत्त ने ब्रह्मा जी को भी अथर्ववेद के विरुद्ध कर दिया। जब कृष्णदत्त के अनुसार ये बड़े-बड़े ऋषि लोग जो सब चारों वेदों के पूर्ण ज्ञाता थे और वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले थे तो उनको वेदों का ही प्रमाण देना चाहिये था। जो सब को स्वीकार्य था, शब्द प्रमाण को छोड़कर दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब उनका शब्द प्रमाण में सन्देह होता है। इस लिये कृष्णदत्त की यह कहानी सर्वथा झूठी है। और सबसे बुरी बात यह है कि कृष्णदत्त ने वृक्षों में जीव न होने की बात ज्वालापुर महाविद्यालय में जाकर स्वामी दर्शनानन्द, पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय और पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री के अनुयाइयों से सुनकर त्रेता युग की कपोल कल्पित कहानी बना डाली। इसको साहित्य की चोरी और जालसाजी कहते हैं।

अब मैं यह बतलाता हूँ कि कृष्णदत्त ने यह चोरी कहाँ से की है। स्वामी दर्शनानन्द जी ने पं० गणपति शर्मा के साथ शास्त्रार्थ करते हुये पं० जी के प्रश्न के उत्तर में कहा था—

"दो प्रकार की गति होती है—'हरकते इरादी' और 'हरकते इन्तजामी' अर्थात् 'विशेष गति' और '**सामान्यगति**' इसलिये 'येन प्राणन्ति वीरुध:' में जिस परमात्मा की शक्ति से लताएँ प्राण धारण करती हैं। ऐसा अर्थ है। संसार के सूर्य, चान्द आदि सब पदार्थ परमात्मा की **सामान्य** गति से (हरकते इन्तजामी) हरकत करते हैं न कि उनमें कोई अभिमानी जीव होता है।" पृ० 13, 14।

"अर्थात् मैं यह बताता हूँ कि वहाँ औषधि आदि के जीवन से तात्पर्य **सामान्य जीवन** से है....... ऐसे ही परमात्मा की **सामान्य**—नियामिका शक्ति से वृक्षादि प्राण धारण करते हैं।" पृ० 47।

पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री का मत (वृक्ष जड़ है)

"वह सामान्य वायु है जो सम्पूर्ण अचर जगत् में व्याप्त होता हुआ परमेश्वर के शाश्वत नियम के अनुसार इन वृक्ष और लताओं को हरा भरा रखता है।" पृ० 52।

पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'हम क्या खायें? घास या माँस?' में जीव के लक्षण करते हुए न्याय दर्शन के निम्न सूत्र को उद्धृत किया है—

"इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दु:ख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति" न्याय 1।10।। अर्थात् आत्मा के लिङ्ग (परिचायक चिन्ह) ये हैं—इच्छा, द्वेष प्रयत्न, सुख, दु:ख और ज्ञान।

मैंने स्वामी दर्शनानन्द जी, पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री तथा पंडित गंगा प्रसाद जी के उदाहरण इसलिये दिये हैं कि इनको देखकर पाठकों को यही पता चल सके कि कृष्णदत्त ने इन लोगों की युक्तियों को चुराकर अपनी मन घडन्त त्रेता युग की एक सभा आदि गुरु ब्रह्मा,

विभाण्डक, पारामुनि, सनत्कुमार, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, शिव, नारद और स्वायम्भुव मनु को बुलाकर उनके मुख से ऐसी लीड्डड़ी और लचर युक्तियों को कहलवाया जिनके झूठ और निःसारता का खन्डन एक साधारण व्यक्ति भी कर सकता है। क्या प्राचीन काल के उच्चतम ऋषियों के पास वृक्षों के सम्बन्ध में इतना ही ज्ञान और युक्तियां थी जो कृष्णदत्त ने दूसरे लोगों से सुनसुनाकर ऋषियों के सिर मढ़ दी जिनका मेरे जैसे एक साधारण व्यक्ति ने दो सौ पृष्ठ की पुस्तक 'वृक्ष जीव धारी है' में इतना प्रबल खन्डन किया है कि चार वर्ष बीतने पर भी स्वामी दर्शनानन्द आदि के समर्थक उसका उत्तर नहीं दे सके और अब भी मैं 'वैदिक अनुसंधान समिति' के कर्णधारों को चुनौती देता हूँ कि वे सब लिखकर मेरी पुस्तक का उत्तर दे?

कृष्णदत्त ने स्वामी दर्शनानन्द जी के अनुयाइयों से सुन सुनाकर अपने प्रवचन में कह डाला कि 'ये वृक्ष तो प्रकृति की सामान्यता से बने हुये हैं। देखो, सामान्य प्राण इनमें विद्यमान है। सामान्य प्राण इनको गति दे रहा है इत्यादि।' परन्तु इसका प्रमाण क्या है? क्या किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में कहीं ऐसा लिखा है? किसी ऋषि, मुनि, दार्शनिक वैज्ञानिक का कहीं ऐसा लेख है? स्वामी दर्शनानन्द जी के अनुयायी 70 वर्ष से इस खोज में हैं कि सामान्य प्राण का कहीं पता चल जाये, परन्तु आज तक सफल नहीं हुये।

कृष्णदत्त का एक और झूठ देखिये ! वह कहता है—"स्वयंम्भू मनु महाराज तथा अन्य आचार्यों ने निर्णय किया कि वृक्षों एवं वनस्पतियों में तो सामान्य प्राण ही रहता है। वही सामान्य प्राण इनमें गति कर है। यह है हमारे दार्शनिकों आचार्यों एवं महर्षियों का मत।" यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि 'स्वयम्भू' नाम का कोई मनु नहीं हुआ बल्कि स्वयम्भू तो

ब्रह्मा का नाम है ब्रह्मा का पुत्र स्वायम्भुव मनु था। स्वायम्भुव मनु ने अपनी स्मृति में स्वयं स्थावर जंगम की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये स्थावरों में जीव माना है उनकी उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातय:।

बीज काण्डरूहाण्येव प्रताना' वल्लय एव च।। ।। 48।।

तमसा बहुरूपेण वेष्टिता: कर्महेतुना।

अन्त: संज्ञा भवन्त्येते सुखदु:खसमन्विता: ।।49।।

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्या: समुदाहृता:।।

घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनी।।50।।

झुण्डों, झाड़ियों, सरकन्डों, ईख आदि को, लताओं और विविध प्रकार के तृण आदि को बीज और टहनियों से पैदा होने वाले पौधों को उत्पन्न किया। ये सब स्थावर योनि के प्राणी अपने कर्म के अनुसार तमोगुण से व्याप्त और सुख दु:ख से युक्त होकर अन्दर की चेतना वाले होते हैं। ब्रह्मा से लेकर स्थावरों में तृण पर्यन्त ये सब जीव की गतियां हैं। मनु 1।48।50।।

स्वायम्भुव मनु ने अपनी स्मृति के अध्याय 12 में यह भी बतलाया है कि किस प्रकार के कर्मों से स्थावर योनि मिलती है। "शरीरजै: कर्म दोषैर्याति स्थावरतां नर:।" 12।9।।

स्थावरा: कृमिकीटाश्च मत्स्या: सर्पा: सकच्छपा:।।12।42।।

अर्थात् मनुष्य शरीर के द्वारा बुरे कर्मों से वृक्ष योनि को प्राप्त होता है। वृक्ष, कृमि, कटी, मछली, साँप और कछवे इनकी जघन्य तामसी गति है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि मनु जी वृक्षों में जीव मानते थे।

महर्षि दयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में मनु स्मृति के इन श्लोकों को प्रमाण रूप में माना है और महर्षि कपिल ने भी मनु का समर्थन करते हुए लिखा है—

आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।।सा० 3।

अर्थात् ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त की योनियाँ जीव के लिए हैं जब तक उसकी मुक्ति न हो जाए। कपिल मुनि ने अपने शास्त्र में अनेक स्थलों पर वृक्षों में जीव होना स्वीकार किया है। (अधिक प्रमाण मेरी लिखी पुस्तक 'वृक्ष जीवधारी है' में देखें।)

वेद के पश्चात् सब से अधिक प्रामाणिक साहित्य उपनिषद् माने जाते हैं। उनसे से छान्दोग्योपनिषद् की एक श्रुति यहाँ देना आवश्यक है। महर्षि उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मा के सम्बन्ध में समझा रहे हैं। उन्होंने श्वेतकेतु के सामने खड़े हुए एक बड़े वृक्ष की ओर संकेत करते हुए कहा—

"अस्य सोम्य ! महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद् यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद् यो ऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्, स एष जीवेनात्मनानु प्रभूत: पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति।।1।।

अस्य यदेकां शाखां 'जीवो' जहात्यथ सा शुष्यति, द्वितीयाँ जहात्यथ सा शुष्यति, तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्व: शुष्यति एव मेव खलु सौम्य ! विद्धीति होवाच ।।2।।

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति।।3।।

अर्थात् हे सोम्य ! इस बड़े भारी वृक्ष को यदि कोई जड़ में चोट मारे तो वह जीता हुआ रिस्ता रहेगा। जो बीच में चोट मारे तो जीता रहेगा और रिस्ता रहेगा और जो टहनी आदि अग्रभाग में चोट मारे तो

जीता हुआ रिस्ता (टपकता) रहेगा। क्योंकि यह वृक्ष जीवात्मा से अधिष्ठित हुआ जल को तथा पृथ्वी के रसों को खूब पीता हुआ लहलाता रहता है। यदि जीव इस वृक्ष की एक शाखा को छोड़ देता है तो वह सूख जाती है। दूसरी को छोड़ देता है तो वह भी सूख जाती है। यदि सारे वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है। हे प्यारे ! ठीक इसी प्रकार से मनुष्य शरीर को जान और यह भी निश्चय जानो कि जीव से रहित होकर शरीर मरता है, जीव नहीं मरता।''

जब वेद, लताओं और औषधियों को प्राण लेने वाली और 'जीवन्ती' जीति हुई मानता है और स्वायंभुव मनु अत्यन्त तामसिक कर्म करने वाले मनुष्यों को वृक्षादि योनि का प्राप्त होना मानते हैं और छान्दोग्योपनिषद् में महर्षि उद्दालक वृक्षों में ऐसे ही आत्माओं का होना मानते हैं जैसा मनुष्यादि दूसरे प्राणियों में, तो फिर यह कहना कि वृक्षादि में 'सामान्य प्राण' होता है मुख्य प्राण नहीं, सर्वथा मन घड़न्त बात है, क्यों कि 'सामान्य प्राण' कोई पदार्थ नहीं। 'प्राण' वायु के उस भाग को कहते हैं जो प्राणधारियों के शरीरों में रहता हुआ उनके रस, मल और धातुओं का प्रेरक होता है जैसा कि वैशेषिक के भाष्यकार प्रशस्तपाद आचार्य, महर्षि कपिल और महर्षि व्यास के प्रमाणों से मैं ऊपर लिख चुका हूँ। इसलिये बिना प्रमाण के कृष्णदत्त के खाली गाल बजाने से वृक्ष निर्जीव नहीं कहे जा सकते। महाभारत के वनपर्व अध्याय 1 में श्लोक 72 में महर्षि व्यास घोषणा करते हैं—

ब्रह्मादिषु तृणान्तेषु भूतेषु परिवर्तते।

जले भुवि तथा ऽऽकाशे जायमानः पुनः पुनः॥

महा० वन० अ०। श्लो० 72

https://t.me/AryavartPustakalay

अर्थात् यह जीवात्मा ब्रह्मा से लेकर तृणों के शरीरों में, जल में, स्थल में, आकाश में बार बार जन्म लेता है।''

कृष्णदत्त का काम नित्य नये झूठ घड़ना और बोलना है। इसके झूठ से घड़े हुये महानन्द का कहना है—'हाँ मिथ्या बोलने का तो अभ्यास हो गया है। मिथ्या उच्चारण करने में तो आपको कोई संकोच नहीं होता।'' (पृ० 43)। यह महानन्द कोई अन्य व्यक्ति नहीं, यह तो स्वयं कृष्णदत्त ही है। हाँ झूठे और पापी व्यक्ति को भी कई बार उसकी आत्मा के अन्दर से भी फटकार पड़ा करती है। कृष्णदत्त को निरा झूठ बोलने में लज्जा क्यों नहीं होती? इसके तीन कारण है—एक तो यह कि वह तमाशा करता है। तमाशा करने वाले (बाजीगर) का काम ही झूठी बात को सच्ची बताना होता है। दूसरे यह कि वह आँख बन्द करके बोलता है और यह सब जानते हैं कि आँखों की शर्म होती है। आँखें बन्द हुई और शर्म गई। जब मनुष्य आँखों के सामने होते हुए बातें करता है तो झूठ बोलता हुआ कुछ शर्माता है। तीसरी बात यह है कि उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है। जब मनुष्य को यह पता होता है कि उसको अपनी कही हुई बातों का उत्तर भी देना पड़ेगा तो वह बातें सम्भल कर करता है। इन तीन बातों के साथ जब अन्धविश्वासी समर्थकों की संख्या काफी बढ़ जाती है तो वह निरंकुश और निर्लज्ज होकर जो जी में आये कह डालता है।

कृष्णदत्त कहता है कि—''हमारे दार्शनिक आचार्यों ने कहा था... परन्तु यह जीव भौतिक माता के गर्भ में पहुँच जाता है तब वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि प्रभो ! इस नरक से मेरी रक्षा करो।

कृष्णदत्त का यह कथन सर्वथा झूठ है। आर्यों के 6 दर्शन प्रसिद्ध हैं, उनमें से किसी ने ऐसा नहीं कहा। बुद्धि भी इस बात को स्वीकार नहीं

करती। गर्भस्थ बालक सुषुप्ति अवस्था में होता है। उसमें किसी प्रकार की अनुभूति नहीं होती। सुख दुःख की अनुभूति या प्रार्थना इत्यादि जाग्रत या स्वप्नावस्था में होती है। सुषुप्ति अवस्था में इन्द्रियाँ और मन काम नहीं करते और मन के बिना आत्मा कभी सुख या दुःख को अनुभव नहीं कर सकता।

कृष्णदत्त ने इस प्रकरण के अन्त में कहा—

"आज तक किसी आत्मा ने युक्तियुक्त विधि से वैदिक प्रमाण के आधार पर यह निर्णय नहीं दिया कि वृक्षों में मनुष्यों की आत्मा पहुँच जाती है अर्थात् वृक्ष योनि धारण करती है।" (पृ० 44)

कृष्णदत्त के इस कथन से उसके सब पाखण्डों को भाण्डा फूट जाता है ! इसके समर्थक कहा करते हैं कि ब्रह्मचारी जी को वर्तमान आन्दोलनों का कुछ भी अनुभव नहीं। वह जो कुछ कहता है वह उसके प्राचीन काल के अनुभवों के आधार पर होता है जब कि वह शृङ्गी ऋषि के शरीर में रहता था और कि महाभारत काल के पश्चात् की सब बातें महानन्द की कही हुई है। परन्तु कृष्णदत्त के इस लेख ने यह सिद्ध कर दिया कि 'आजतक' अर्थात् 17 जौलाई सन् 1963 ई० तक के लिये हुए वैदिक साहित्य का उसने अध्ययन किया है, जिसमें वृक्षों में जीव होने या न होने पर विचार किया गया है, 17 जौलाई सन् 1966 ई० तक के वृक्षों में जीव के विषय पर कई पुस्तक लिखी जा चुकी थी। उनमें एक पुस्तक वृक्षों में जीव विचार' है जिसमें स्वामी दर्शनानन्द जी और पं० गणपति शर्मा के मध्य शास्त्रार्थ का विवरण है जो; अप्रैल सन् 1912 को हुआ' दूसरी पुस्तक 'हम क्या खायें? घास या मास' है, इसके लेखक पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय हैं। तीसरी पुस्तक, वृक्ष जड़ हैं' है, इसके लेखक पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री है, इन तीनों पुस्तकों को कृष्णदत्त ने

अवश्य पढ़ा या सुना है। इसीलिये कृष्ण दत्त के उपर्युक्त प्रवचन में इन ही पुस्तकों की अधूरी अधूरी नकल है। यदि इससे इन्कार किया जावे तो कृष्णदत्त झूठा है, क्योंकि उसने मोटे अक्षरों में घोषणा की है कि....

"आज तक किसी आत्मा ने युक्तियुक्त विधि से वैदिक प्रमाण के आधार पर निर्णय नहीं दिया।" इससे यह भी पता चला कि कृष्णदत्त जो कुछ कहता है वह वर्तमन काल से लोगों से सुन सुनाकर ही कुछ उलटफेर करके कह देता है। इसलिए उसने स्वामी दर्शनानन्द आदि की नकल करते हुए उन्हीं की तरह वेदादि शास्त्रों का प्रमाण नहीं दिया। प्राचीनकाल के ऋषियों की सम्मत्ति की बात तो वह झूठ कहता है क्योंकि प्राचीन काल के ऋषि तो ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द तक सब ही वेद के अनुयायी थे, अत: उन्होंने वेद के प्रमाण से वृक्षों को जीवधारी माना था, कृष्णदत्त को वेदों से और वेद के प्रमाणों से क्या प्रयोजन ! वह तो गर्दन हिलाने मात्र से सिद्ध ऋषि बनना चाहता हैं।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जो इस युग के निर्माता और वेदों के पुनरुद्धारक थे वेदों, स्मृतियों, दर्शन शास्त्रों का अच्छी प्रकार से मन्थन करके और अपनी समाधि के द्वारा यह निश्चित किया कि वृक्षों में भी वही आत्मा फल भोगता है जिसने पहले मनुष्य जन्म में अत्यन्त तामसिक कर्म किये थे' इसलिए उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के आठवें, नवमे और 12 वें समुल्लास में उस सिद्धान्त का वर्णन किया है और अपने वेदभाष्य में भी कई स्थलों पर वृक्षों को जीवधारी माना है। महर्षि दयानन्द जी ने अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व थ्योसोफीकल सुसाइटी की नेता मेडम ब्लैवैत्सिको को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने मरने के पश्चात् जीव की गति' के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया था। पत्र इस प्रकार है-

"Dear M. Blavatsky (I) After death mans or any ones 'Atma' lives in air "vayu" according to the sins or virtues of the departed soul. God allows the transmigration or a new life. When there is soul proportion of sins and numirous good deeds then the soul gets a body of highly educated man or Deva in proportion to good deeds and after leaving Vidwan body; where the sins and virtues are equal, then soul gets a man body. When sins increase and vertues decrease the soul is sent to lower creation and vegetable world. The 'Jiwa' or soul suffers for the increased quantity of sins in the bodies of lower animals or in from of treas, plants etc."

(ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन संख्या 131 पृ० 153)

अर्थात् प्रिय मेडम ब्लैवैत्सकी (1) मनुष्य या किसी प्राणी की मृत्यु के पश्चात् उसका आत्मा वायु में रहती है। परमात्मा उस मृत आत्मा के पाप और पुण्य के अनुसार उसको पुनर्जन्म या नया जन्म देता है जब पापों का अनुपात पुण्यों के अनुपात में कम होता है तो आत्मा अत्यन्त विद्वान् या देव का जन्म ग्रहण करता है। और फिर वह शरीर को छोडकर मोक्ष को अर्थात् सब दु:खों से छुटकारा पा जाता है। जब पाप और पुण्य का अनुपात समान होता है तो मनुष्य का जन्म मिलता है। जब पाप अनुपात से अधिक होते है और पुण्य कम होते हैं तो आत्मा नीची योनियों में या वनस्पतियों में भेजा जाता है। जीव बढ़े हुए पापों का फल वृक्ष, पौधे आदि जन्तुओं के रूप में भोगता है।''

ऋषि दयानन्द के इस पत्र से वृक्षों में जीव के सम्बन्ध में उनके सुनिश्चित और सुविचारित मत का पता चलता है। परन्तु उन्हें क्या पता

था कि उन्हीं का एक अनुयायी उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके इस निश्चित मत का खण्डन करने के लिये कटिबद्ध हो जायेगा? यह अनुयायी पं० कृपाराम शर्मा जगरावां (पंजाब) निवासी था जो बाद में स्वामी दर्शनानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए उन्होंने ऋषि दयानन्द की मृत्यु के 15 वर्ष पश्चात् ही वृक्षों में जीवात्मा के न होने का शोशा छेड़ दिया, जिस से आर्य समाजी जगत् में हलचल मच गयी। स्वामीदर्शनानन्द जी के मत का खण्डन हुआ' अन्त में 8 अप्रैल सन् 1912 ई० में ज्वालापुर महाविद्यालय में इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ जिसको बाद में छपवा दिया गया, पुस्तक का नाम 'वृक्षों में जीव विचार' है इस पुस्तक में पढ़ने से पता चलता है कि स्वामी दर्शनानन्द जी किसी विषय के निर्णय के लिये केवल तर्क को ही प्रमाण मानते थे वे वेद को स्वतः प्रमाण नहीं मानते थे इसलिये वेद के प्रमाण को साध्यसमस हेत्वाभास मानते थे। अर्थात् इस बारे में उनका मत ऋषि दयानन्द के मत से विरुद्ध था। इसलिये कृष्णदत्त ने भी स्वामी दर्शनानन्द की नकल करते हुए वेदादि शास्त्रों का कहीं प्रमाण नहीं दिया और सच बात यह है कि उसको वेदादि शास्त्रों का रत्ती मात्र भी पता नहीं। उसका सारा प्रवचन दूसरों की उलटी सुलटी नकल पर आधारित है !

ऐतिहासिक कसौटियां

मैंने अभी तक आर्यों के प्राचीन इतिहास और वैदिक साहित्य के आधार पर ही कृष्णदत्त के झूठों की चर्चा की है इससे साधारण जनता को शायद सत्य और असत्य का निर्णय करने में कुछ कठिनाई हो? इसलिए अब कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन करना आवश्यक है जिससे सर्वसाधारण को निर्णय करने में सरलता होगी। उनको नीचे दिया जाता है—

(1) "यहाँ महाराजा युधिष्ठिर के राष्ट्र के पश्चात् अभिमन्यु के पुत्र का राष्ट्र हुआ जिसको हमारे यहाँ परीक्षित कहा जाता है। उनके पश्चात् परीक्षित की प्रणाली में मामनुक राजा हुए मानो आमान्तरी राजा हुए आमान्तरी राजा के पश्चात् विक्रम नामा के राजा हुए। उनके पश्चात् शांगीण नाम का राजा हुआ। शांगीण नाम के राजा के पश्चात् यहाँ सतकामातुर नाम का राजा हुआ उसके पश्चात् यह प्रणाली समाप्त हो गई थी। इस प्रणाली के समाप्त हो जाने के पश्चात् यहाँ जैनियों का साम्राज्य आ गया।" (बारहवाँ पुष्प पृ० 31, 32)

समीक्षा—कृष्णदत्त के इस प्रवचन में सब झूठ है इस लेख में परीक्षित की प्रणाली में मामनुकश या आमान्तरी, विक्रम, शांगीण, सतका-मातुर आदि चार या छ: राजाओं का नाम लिखा है। परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश के 11वें समुल्लास के अन्त में जो वंशावली दी है श्रीमन्महाराजे सुधिष्ठिरादि, वंश अनुमान पीढ़ी 30, वर्ष 1770 मास 11 दिन 10 दी है। इस वंशावली में युधिष्ठिर और परीक्षित को छोड़कर 28 नाम और दिये गये हैं। जिनमें परीक्षित के पश्चात् जनमेजय, अश्वमेघ द्वितीय राम, दत्रमल, चित्ररथ और दुष्ट शैल्य आदि क्रमश: नाम दिये हैं। कृष्णदत्त के बतलाये हुये नामों में से एक नाम भी इस वंशावली में नहीं आता यही नहीं बल्कि युधिष्ठिर के पश्चात्

पृथ्वीराज तक दिल्ली या इन्द्रप्रस्थ की गद्दी पर बैठने वाले 124 आर्य राजाओं की सूची में उनका कहीं नाम नहीं आता। केवल एक विक्रम नाम आया है, वह भी परीक्षित की प्रणाली का नहीं था अर्थात् वह अवन्तिका (उज्जैन) से चढ़ाई करके राजा महान् पाल को मार के राजा बन गया था। राजाओं की वंशाली में विक्रमादित्य का नाम 71वें नम्बर पर है। परन्तु कृष्णदत्त ने विक्रम का नाम दूसरे नम्बर पर दिया है। इसलिए कृष्णदत्त का परीक्षित की प्रणाली के राजाओं के सम्बन्ध में कहा हुआ प्रवचन सर्वथा झूठ और मन घड़न्त है।

उसका यह कहना भी सर्वथा झूठ है कि परीक्षित की प्रणाली के पश्चात् यहाँ जैनियों का साम्राज्य हो गया था। इसके सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के लिखित प्रमाण को पढ़ें—

"(जैनियों में) परमेश्वर को मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्ति पूजा में लगे। ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त्त में जैनों का राज्य रहा। प्राय: वेदार्थ से शून्य हो गये थे। इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुये होंगे।" यदि बौद्ध और जैनियों के प्रचार को प्रारम्भ हुए आज तक 2500 वर्ष मान लिया जावे तो उससे 2613 वर्ष पूर्व युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठे थे क्योंकि युधिष्ठिर का संवत् कलियुग के प्रारम्भ होने से 38 वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ था। इस हिसाब से युधिष्ठिर सम्वत् को प्रारम्भ हुए 5076 + 38 = 5114 वर्ष आज तक हो गए। कृष्णदत्त के प्रवचन के अनुसार इस वंश में कुल 6 ही राजा हुये थे, जिनके राज्य शासन का अधिक से अधिक समय 500 वर्ष हो सकता है। तो प्रश्न उठता है कि युधिष्ठिर की प्रणाली के पश्चात् 2113 वर्ष कहा गए? इस गणना के अनुसार जैनों और बौद्धों का राज्य और प्रचार परीक्षित वंशावली के 2113 वर्ष के पश्चात् होता है। परन्तु कृष्णदत्त कहता है कि—"इस प्रणाली के समाप्त होने के पश्चात् यहाँ जैनियों का साम्राज्य

https://t.me/AryavartPustakalay

आ गया।'' इसलिए कृष्णदत्त का झूठ और पाखण्ड इससे स्पष्ट सिद्ध हो गया, अनुसन्धान समिति वाले बतलाएं कि ये 2113 वर्ष कहाँ चले गये?

(2) "आगे चलकर के (महावीर के पश्चात्) वही महात्मा बुद्ध की उत्पत्ति होती रही।''

समीक्षा—कृष्णदत्त का यह कहना भी झूठ है, क्योंकि महात्मा बुद्ध का जन्म महावीर से पहले हुआ। अर्थात् महात्मा बुद्ध के जन्म को 2519 वर्ष हो चुके हैं और महावीर स्वामी को 2500 वर्ष।

(3) "महाराजा भोज के काल में कालिदास हुये, जिन्होंने मौहम्मद को नष्ट किया था। मृत्यु को प्राप्त करा दिया था।''

समीक्षा—कृष्णदत्त का यह भी झूठ है, क्योंकि न तो कालिदास का अरब में जाना सिद्ध होता है और न मोहम्मद का भारत में आना। मोहम्मद और कालिदास समकालीन भी नहीं थे इसलिए यह कहना झूठ है कि कालिदास ने मोहम्मद को नष्ट किया था। मोहम्मद की जीवनी से पता चलता है कि वह किसी लड़ाई में नहीं मारा गया अर्थात् वह बीमारी से मरा था। उसकी मृत्यु 'मदमेंना' में हुई थी।

(4) "महात्मा दयानन्द की आत्मा भी अन्तरिक्ष में रो रही है।''

समीक्षा—कृष्णदत्त का यह भी झूठ है क्योंकि महर्षि दयानन्द अखण्ड ब्रह्मचारी, पूर्णयोगी और परम ईश्वर भक्त थे, इसलिए उनकी आत्मा मुक्त होकर मोक्ष आनन्द को भोग रही है। इसलिये वह व्याकुल नहीं हो सकती। जो मनुष्य निष्काम कर्म करता है वह जीवन काल में भी व्याकुल नहीं होता? अत: कृष्णदत्त झूठा है।

(5) "महात्मा बुद्ध का आगमन हुआ उन्होंने ..... द्वितीय राष्ट्रों में भ्रमण करके उन्होंने कहा—अहिंसा परमो धर्म।''

समीक्षा—महात्मा बुद्ध भारत से बाहर किसी दूसरे राष्ट्र में नहीं गये।

(6) "शंकराचार्य अपने खन्डे को लेकर मूर्तियों पर आक्रमण करते।"

समीक्षा—कृष्णदत्त झूठ बोलता है, क्योंकि स्वामी शंकराचार्य संन्यासी थे और पूर्णयोगी थे उन्होंने कभी भी खण्डे का प्रयोग नहीं किया।

(7) मोहम्मद जब राजा बन गये तो उन्होंने आसवातो नाम के वृक्ष पर एक पुस्तक बनाकर के अर्पण की और उसके पश्चात् राष्ट्र के महान् चुने हुए व्यक्तियों का समाज एकत्रित किया और कहा कि भाई मुझे परमात्मा के दर्शन हुए हैं, और परमात्मा ने मुझे एक पुस्तकालय दिया है जिसको मैं आज महान् बनवाना चाहता हूँ। आज मेरे इस वाक्य को स्वीकार करो। उन्होंने उस वृक्ष का निर्णय किया। उन व्यक्तियों ने उस वृक्ष को समाप्त किया तो उन्होंने देखा कि वह पुस्तक वैसे ही थी उन्हें विश्वास हो गया।"

समीक्षा—इसमें कृष्णदत्त एक शरारत पूर्ण झूठ बोल रहा है। कुरान में या मुसलमानों के किसी साहित्य से इस झूठी शरारत का पता नहीं चलता। मुसलमानों के विरोधी ईसाइसों, यहूदियों, आर्यसमाजियों या अरब के काफिरों ने भी कभी इस प्रकार का आरोप मौहम्मद पर नहीं लगाया। मोहम्मद ने तो अरब का बादशाह बनने से 20 वर्ष पहले ही अपने आप को खुदा का पैगम्बर कहना आरम्भ कर दिया था, राज्य प्राप्त करने से पहले ही लाखों व्यक्ति उसके शिष्य बन चुके थे। और सैंकड़ों व्यक्तियों को कुरान कंठस्थ हो गया था। इसलिये आसवाती वृक्ष पर कुरान के रखने की बात सर्वथा झूठी है।

(8) "महर्षि अगस्त्य, महर्षि याज्ञवल्क्य जिनका करोड़ों वर्षों से नामोच्चारण है।"

समीक्षा—यह भी झूठ है, क्योंकि अगस्त्य तो रामायण काल के ऋषि हैं जिनका राम से लम्बा चौड़ा सम्वाद हुआ था, रामायण के काल को 9-10 लाख आंका जा सकता है इसलिये 9-10 लाख को करोड़ों बताना बड़ा भारी झूठ है। याज्ञवल्क्य व्यास के शिष्य थे जो युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ के अध्वर्यु थे जिसको 5100 वर्ष होते हैं। उनको भी करोड़ों वर्ष बतलाना झूठ है।

(9) "महाराज जनमेजय सर्प यज्ञ कराने के पश्चात् जिसको हम पूर्वकाल में जनमस्ति कहा करते थे और आज जरमनी कहते हैं। वहाँ जाकर जनमेजय ने एक सूक्ष्म या राष्ट्र बनाया और वहाँ अनुपम वेद के साहित्य को स्थापित किया।"

समीक्षा—यह भी कृष्णदत्त की निरी गप्प और मूर्खता है, क्योंकि जनमेजय तो अपने काल का चक्रवर्ती राजा था, उसके पितामह युधिष्ठिर और अर्जुन ने अश्वमेध यज्ञ करके अपने चक्रवर्ती होने की घोषणा कर दी थी। इतने बड़े चक्रवर्ती साम्राज्य और स्वर्ग के समान सोने की चिड़िया भारत वर्ष को छोड़कर जर्मनी में जाकर छोटे से राज्य की स्थापना करना तो ऐसी ही मूर्खता है जैसे हीरे जवाहरात की खान को छोड़कर गलियों की कंकर को चुनना। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के 11वें समुल्लास में आर्य राजाओं की वंशावली में राजा परीक्षित के पश्चात् जनमेजय का राजा होना लिखा है। वे 84 वर्ष तक इन्द्रप्रस्थ की गद्दी पर रहे।

(10) "महाराजा महावीर के जो अनुयायी थे, उन्होंने यहाँ पुस्तकालय के पुस्तकालय समाप्त कर दिये। मैंने आज से 3500 वर्ष पूर्व वह दृश्य देखा है जब यहाँ महाराजा पाण्डु के साहित्य को अग्नि के मुखार्बिन्दु में अर्पण कर दिया था।"

समीक्षा—इतिहास के जानने वाले और भारत की सर्व साधारण जनता जानती है कि जैनियों के प्रसिद्ध तीर्थकर महावीर स्वामी के जन्म

को आज तक 2500 वर्ष हुये हैं तो आज से 3500 सौ वर्ष पहले उनके अनुयायी कहाँ थे, जिन्होंने पाण्डु के पुस्तकालय को जला दिया था? यह झूठ नहीं तो क्या है कि गुरु से हजार वर्ष पहले ही अनुयायी हो गये?

(11) 'यवनों द्वारा जब बन्दा वैरागी के शरीर को नोचा जा रहा था तो मग्न हो रहा था। और क्यों मग्न था? क्योंकि वह महात्मा नानक के आदेशों को पूर्ण कर रहा था कि मैं धर्म पर अपने मानव जीवन को नष्ट कर रहा हूँ।''

समीक्षा- इतिहास का जानने वाला प्रत्येक भारतीय और विशेषतया प्रत्येक सिक्ख जानता है। कि मुसलमान शासकों के विरुद्ध खुल्लम खुल्ला सैनिक संघर्ष गुरु गोविन्द सिंह जी ने प्रारम्भ किया था और वे ही वैरागी जी को दक्षिण में स्थित गोदावरी तट से अपनी सहायता के लिये पंजाब में लाये थे। वैरागी जी ने उस समय गुरु गोविन्द सिंह जी से कहा था—

'मैं आपका बन्दा हूँ।' इसलिये वैरागी जी को 'बन्दा वैरागी' कहने लगे, परन्तु इस लाल भुज्जकड़ ने आर्य उपदेशकों से सुन सुनाकर उलट पुलट कर अपने आविष्कार की डींग मार दी।

(12) ''मोहम्मद गौरी जहाँ मुहम्मद उत्पन्न हुआ था वहाँ से भारत भूमि को चला और यहाँ क्या नहीं किया? सोमनाथ के मन्दिर को नष्ट करके वहाँ से दस हजार कन्याओं को ले जाकर अरब में उन्हें दो मुद्राओं में बेचा गया।''

समीक्षा- मोहम्मद गौरी के भारत आक्रमण को पढ़े लिखे ऐतिहासिक लोग ही नहीं अपितु देहली के आस-पास के अनपढ़ लोग भी जानते हैं कि मोहम्मद गौरी की लड़ाई दिल्ली के राजा पृथ्वीराज से हुई थी। पहली लड़ाई जो पानीपत के मैदान में हुई थी, उसमें मोहम्मद

गौरी हार गया था, परन्तु दूसरी बार उसने फिर चढ़ाई की और पानीपत के मैदान में ही लड़ाई हुई, उसमें पृथ्वीराज मारा गया, मोहम्मद गौरी न तो अरब से आया, न उसने सोमनाथ पर आक्रमण किया, न मन्दिर को नष्ट किया, न दस हजार कन्याओं को पकड़कर ले गया और न वह लौट कर अरब गया। वह अफगानिस्तान के शहर गजनी से आया था फिर लौटकर वहाँ ही चला गया था। इस एक घटना के वर्णन को सुनकर ही बुद्धिमानों को समझ लेना चाहिये कि कृष्णदत्त कितना चालाक और झूठा है कि वह दूसरों से सुनी सुनाई उलटी-सुलटी बातों को अपनी देखी हुई घटना कहकर जनता को कितना धोखा दे रहा है? यह उसने कहाँ से सुनी, इसको भी देखिये? महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के 11वें समुल्लास में मूर्ति पूजा के दोष बताते हुये महमूद गजनवी के आक्रमण का जो उसने सोमनाथ मन्दिर पर किया था वर्णन किया है, उसी वर्णन को कृष्णदत्त ने किसी से सत्यार्थ-प्रकाश से सुना या स्वयं पढ़ा या किसी उपदेशक के व्याख्यान में इसको सुना। उसके पश्चात् वह नामों और स्थानों को भूल गया तो अपनी कल्पना से कुछ का कुछ कह डाला।

कृष्णदत्त के सारे प्रवचन इस ही प्रकार से दूसरों से सुने सुनाये होते हैं। परन्तु वह ढोंग रचकर और लेटकर गर्दन हिलाते हुये इस ढंग से कहता है कि साधारण जनता इन सब घटनाओं को कृष्णदत्त की देखी हुई समझ लेती है।

(18) "महात्मा दयानन्द से पूर्व महात्मा नानक का जन्म हुआ। जिसने अपना जीवन राष्ट्र के लिये न्यौछावर किया। यवनों से संग्राम करने के लिये उन्होंनें एक विचारधारा निर्धारित की।"

समीक्षा—कृष्णदत्त का यह कहना भी सर्वथा झूठ हैं! क्योंकि महात्मा नानक देव ने तो हिन्दू मुसलमानों में एकता पैदा करने का प्रयत्न

किया था। उनकी किसी वाणी से या उनके किसी कार्य से यह सिद्ध नहीं होता कि उन्होनें मुसलमानों के विरुद्ध किसी को भड़काया हो! यहाँ भी कृष्णदत्त ने वही भूल की जो उन्होनें दूसरे प्रवचनों में की। बाबा नानक के समय में दिल्ली बादशाह बाबर था, जिसके साथ गुरु जी के सम्बन्ध अच्छे थे, बाबर उनको पहुँचा हुआ सन्त समझता था और कहते हैं कि बाबर ने उनका सम्मान करते हुये उनको बहुमूल्य चौगा भी दिया था, जो आज तक मौजूद है।

(19) "जब वह (सुखदेव जी) माता के गर्भ से उत्पन्न हुये और पाँच वर्ष के पश्चात् गृह को छोड़ दिया। वह गुरु के भाव के लिये राजा जनक के द्वार पहुँचे।"

कृष्णदत्त का यह कहना भी सर्वथा झूठ है। इसके कई कारण है एक तो यह है कि राजा जनक के द्वार पर कोई व्यक्ति तीन दिन रात तो क्या एक रात्रि भी भूखा नहीं रह सकता था, क्योंकि राजा जनक का सारा जीवन यज्ञमय था, वह किसी की भूख आदि की पीड़ा को सहन नहीं कर सकता था, वह राजा होने के कारण भी अपना कर्त्तव्य समझता था कि उसके राज्य में कोई भूखा न रहे, कृष्णदत्त ने किसी से नचिकेता की कथा सुनी थी, जिसमें वह 'यम' के द्वार पर तीन दिन और तीन रात्रि तक भूखा रहा था नचिकेता के भूखे रहने का तो कारण यह था कि 'यम' अपने गृह पर नहीं था, परन्तु जनक के बारे में ऐसा कुछ नहीं था। दूसरी बात यह है कि कृष्णदत्त ने सुखदेव जी के सम्बन्ध में कहा है—

"महर्षि व्यास के पुत्र राजा जनक के द्वार पहुँचे तो उस परम हंस को नग्न देव कन्याओं में स्थान दिया। रात्रि के समय उसने देखा कि यहाँ तो तेरे लिये नष्ट करने वाले बज्र तेरे समक्ष आते चले आ रहे हैं। जब उसने यह देखा तो वह उस परमात्मा का चिन्तन करने लगा और देखता रहा कि तू इस मृत्यु आँगन से किस काल में बचेगा। कब प्रात:

काल होगा, कब तू इस स्थान से बाहर होगा। कब तू इस मृत्यु से बचेगा।'' इस लेख से पता चलता है कि शुकदेव जब जनक के द्वार पर गया उस समय उसकी बाल्यावस्था नहीं थी बल्कि युवावस्था थी, क्योंकि 5 या 6 वर्ष की आयु में किसी बालक के अन्दर कामनायें इतनी प्रबल नहीं होती कि वह नग्न कन्याओं को देखकर बेचैन हो उठे! आजकल भी 5, 6 वर्ष की आयु के बालक और बालिकायें नग्न रहते हैं और साथ-साथ खेलते है, परन्तु उनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। इससे यही सिद्ध होता है कि राजा जनक के पास 'शुकदेव' उस समय गया जब वह सर्वथा भरपूर युवावस्था में था। परन्तु इसके साथ यह प्रश्न उठता है कि राजा जो बड़ा धर्मात्मा और योगी था, उसने एक युवक को नग्न कन्याओं के साथ क्यों रख दिया? उत्तर यह है कि राजा जनक का मस्तिष्क तो सदा समावस्था में रहता था, यह विकार तो कृष्णदत्त के मस्तिष्क का है जिसमें कभी स्थिरता नहीं रहती, इसलिये वह कुछ का कुछ कह डालता है। इसलिये शुकदेव जी के सम्बन्ध में कृष्णदत्त की दोनो बातें ही झूठ हैं। वास्तविकता क्या है? उसे सुनिये! शुकदेव जी के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी ने महाभारत के आधार पर लिखा है "एक समय व्यास अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल (जिसको आजकल अमरीका कहते हैं) देश में निवास करते थे। शुकाचार्य ने अपने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी है या अधिक? व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर नहीं दिया। क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा—

"उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम्।

स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलेन विशेषतः॥ 6॥

पितुर्नियोगादगमन्मैथिलं जनकं नृपम्।

प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम्।। 7।।

अर्थ—व्यास जी ने तब कहा कि तू जनक के पास जा जो मिथिला के राजा हैं, वह तुम्हें मोक्ष के सम्बन्ध में अच्छी प्रकार से सक कुछ कह देगा। वह पिता की आज्ञा से धर्म की निष्ठा और मोक्ष के रहस्य को पूछने के लिये मिथिला के राजा जनक के पास गया।'' इसके आगे 14, 15 श्लोकों में लिखा है—

''मेरो हरिश्च द्वे वर्ष हैमवतं ततः।

क्रमेणैवं व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्।। 14

स देशान् विविधान् पश्यंश्चीन हूण निषेवितान्।

आर्यावर्तमिमं देशं जगाम स महामुनिः।। 15।।''

महाभारत शान्ति पूर्व मोक्ष धर्म अ० 311 व्यास शुक सम्वाद।।

अर्थ—वह महामुनि शुकाचार्य मेरू पर्वत के पास के देशों से होकर हरिवर्ष अर्थात् यूरोप के देशों में होता हुआ हिमालय प्रदेश में आया और वहाँ से आर्यवर्त्त देश में आ गया। जिन देशों से वह होकर आया उनमें चीन और हूण लोग रहते हैं।

इस व्यास शुक सम्वाद से पता चलता है कि व्यास जी ने शुक को जनक के पास भेजा उस समय वह 5 वर्ष का बालक नहीं था बल्कि वह प्रौढ़ावस्था को पहुँच चुका था, वह अपने पिता से बहुत कुछ सीख चुका था। विशेष बातें जानने कि लिये राजा जनक के पास मिथिला में गया।

राजा जनक द्वारा शुकाचार्य को नग्न कन्याओं के मध्य में रखने की बात कृष्णदत्त के हृदय की कलुषता को प्रकट करती है। उसे स्त्रियों की नग्नता का वर्णन करने में विशेष आनन्द आता है। शुकाचार्य न तो

बाल्यावस्था में जनक के पास गया और न युवावस्था में नग्न कन्याओं के बीच में रात बिताई।

(20) "आज मैं गोवर्धन के ऊपर प्रकाश देना चाहता हूँ। जहाँ भगवान् कृष्ण जैसे महापुरुषों ने गोवर्धन—गौ की पूजा की, उस महान् गौ के गोबर की .... भगवान् कृष्ण आज के दिवस संसार के महापुरुषों को एकत्रित करते और इस गोबर की पूजा करते।"

समीक्षा—इस प्रवचन में तो कृष्णदत्त ने अपने आप को पूरा लाल भुजक्कड़ सिद्ध कर दिया। गोवर्धन शब्द को गोबर—धन कहकर, इसकी व्याख्या करते हुये हमने पहले भी कई अनपढ़ उपदेशकों को देखा था और उनकी मूर्खता पर हँसे भी थे, परन्तु अब इस 'प्राचीन ऋषि' का ढोंग रचने वाले कृष्णदत्त की मूर्खता को उन अनपढ़ उपदेशकों की नकल के सिवाय और क्या कह सकते हैं? वास्तविकता यह है कि 'गोवर्धन' नाम का एक छोटा सा पहाड़ है जो ब्रज भूमि के अन्तर्गत है। महाराज कृष्ण के जन्म से पहले ही से मथुरा के आस-पास के क्षेत्र में गोप (गोपाल) लोगों की बस्ती थी। उन लोगों का व्यवसाय अधिकतर गोपालन ही था, इसलिये उन्हें गोप कहते थे। और उस क्षेत्र को भी गऊओं की बहुतायत के कारण 'ब्रज' अर्थात् गऊओं के ठहरने का स्थान कहते थे। उस समय गोप लोगों का केन्द्रीय स्थान 'गोकुल' के नाम से प्रसिद्ध था। गोवर्धन पर्वत पर गऊओं के लिये चारा घासादि बहुत होता था और वर्षा ऋतु में विशेषत: गऊओं को वहाँ बड़ा सुख मिलता था।

इससे वहाँ गोवंश की वृद्धि भी होती थी, इसलिये उस पर्वत का नाम 'गोवर्धन' प्रसिद्ध हो गया था। महाराज कृष्ण भी जब शैशवावस्था में ही मथुरा से गुप्त रूप में लाकर गोकुल में नन्द गोप के यहाँ रखे गये थे तो

कुछ बड़े होने पर वे भी दूसरे गोपों के साथ गऊओं को चराने के लिये 'गोवर्धन' पर्वत पर जाया करते थे और वे वहाँ खेलकूद और कुश्ती आदि में और व्यूह आदि रचना में तथा गाने बजाने में खूब आनन्द का अनुभव करते थे। कालान्तर में महाराज कृष्ण का क्रीड़ा क्षेत्र होने के कारण उस स्थान का महत्त्व बढ़ गया। बहुत समय बीतने पर जब भारत में अविद्या फैल गई और एक ईश्वर की पूजा छोड़कर लोग ईंट, पत्थर, वृक्ष, नदी, नालों और पहाड़ों को पूजने लगे तो ब्रज के लोगों ने भी 'गोवर्धन' की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा प्रारम्भ कर दी। अन्य लोगों ने दीप माला से अगले दिन अपने घरों में गोबर की पहाड़ की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा आरम्भ कर दी कृष्णदत्त ने इस अविद्या के कारण चलाई गई गोबर की मूर्ति की पूजा को भी महाराज कृष्ण जैसे योगी के सिर मढ़ने की मूर्खता की है। सब जानते हैं कि महाराज कृष्ण के युग में जनता की भाषा संस्कृत थी। और श्रीकृष्ण जी स्वयं वेदों और शास्त्रों के पारंगत विद्वान् थे, वे जानते थे कि 'गोवर्धन' शब्द का अर्थ गोवंश की वृद्धि करने वाला स्थान होता है, परन्तु कृष्णदत्त संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ है, तथापि अपनी सिद्धाई को प्रकट करने के लिये गोवर्धन के स्थान में गोबर-धन कहकर गोबर की पूजा कृष्ण के द्वारा प्रचलित बताई 'गोबर्धन' शब्द दो पदों से मिलकर बना है गो + वर्धन जिसका अर्थ है गऊओं की वृद्धि, 'गोबर' शब्द का संस्कृत का नहीं है, अपितु हिन्दी का है। संस्कृत में 'गोबर' को 'गोमय' कहते हैं। यदि श्री कृष्ण जी गोबर की पूजा चलाते तो उसका नाम 'गोमय पूजा' रखते। परन्तु वे इस प्रकार की मूर्खता करते ही क्यों? वे तो एक ब्रह्म की पूजा ही सिखाते थे, जैसा कि उन्होनें अर्जुन को समझाया—'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत'।।

हे अर्जुन ईश्वर तो सब प्राणियों के हृदय में बसता है। हे भारत अपनी सब भावनाओं से उस ही की शरण में जाना चाहिये। महाभारत में कहीं ऐसा वर्णन नहीं आता जहाँ श्री कृष्ण ने गोबर की पूजा की हो। अतः कृष्णदत्त का यह प्रवचन शरारत से भरा है।

कृष्णदत्त का यह कहना ऐतिहासिक झूठ है 'कि भगवान् कृष्ण आज के दिन गोवर्धन की पूजा के लिये संसार के महापुरुषों को एकत्रित करते थे।' क्योंकि महाराज कृष्ण गोकुल में राजानन्द के यहाँ जब रहते थे उसी समय वह गोप लोगों के साथ गऊयें चराते हुये वृन्दावन और गोवर्धन पर्वत पर आते जाते थे और उनके उत्सवों में सम्मिलित होते थे उस समय तक वह 'अज्ञात वास अवस्था में थे', क्योंकि कंस के भय से उनको गुप्त रूप से 'नन्द गोप' का पुत्र प्रसिद्ध करके गोकुल में रखा हुआ था, इसलिये न तो श्री कृष्ण संसार के महापुरुषों के साथ मिलने जाते थे और न बाहर का कोई महापुरुष उससे मिलने आता था। 20 वर्ष की आयु में वह खुल्लमखुल्ला मथुरा में गया और वहाँ कंस का विध्वंस कर दिया। मथुरा जाने के पश्चात् उनको ब्रजभूमि में जाने का अवसर ही नहीं मिला। कुछ दिनों के पश्चात् उन्होनें अपनी राजधानी द्वारिका में बना ली। अतः कृष्णदत्त का प्रवचन सारा झूठ और कपोल कल्पित है कि वह संसार के महापुरुषों को गोवर्धन की पूजा के लिये आज के दिन एकत्रित करते थे।

(21) "जब अर्जुन ने यह कहा कि महाराज! आपने जो कहा—'सूर्या अंगते अबम्राकृतिः' सूर्य को मैंने ज्ञान दिया तो प्रभो! सूर्य तो परम्परागतों का है। और अक्षवा को बहुत समय हुआ। ऐसा कहा जाता है कि यही भगवान् कृष्ण की आत्मा ही मनु जी के शरीर में प्रविष्ट हो रही थी,

उस काल में इसी आत्मा का सर्व प्रथम जन्म महाराजा मनु का हुआ। उसके पश्चात् उन्होनें सूर्य और अक्षवा को ज्ञान दिया। क्योंकि भगवान् मनु के पुत्र का नाम सूर्य था। सूर्य नाम का रुत्र राजा था। उसके पुत्र का नाम अक्षवा था।'

समीक्षा—इस प्रवचन को पढ़ने से पता चलता है कि कृष्णदत्त ने किसी आर्य उपदेशक के मुख से या गीता के चतुर्थ अध्याय के उन श्लोकों को सुना जिनमें श्री कृष्ण जी अर्जुन से कह रहे थे—'हे अर्जुन मैंने इस अव्यय योग को पहले विवस्वान् अर्थात् सूर्य को कहा था, सूर्य ने उसको मनु से कहा और मनु ने 'झक्ष्वाकु' को बतलाया। इस प्रकार से परम्परा से आता हुआ वह योग नष्ट हो गया था, उसी पुराने योग को मैंने तुम्हें बतलाया।' परन्तु कृष्णदत्त ने अपने स्वभाव के अनुसार अपनी सिद्धाई को प्रकट करने के लिये इसमें भी उलट फेर कर दिया। गीता के अनुसार कृष्ण ने पहले यह योग सूर्य को कहा था और सूर्य ने अपने पुत्र मनु को वह योग बतलाया, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को वह रहस्य बतलाया' गीता के इस कथन की पुष्टि मनुस्मृति अध्याय 1 श्लो० 61, 62 से भी होती है जिसमें 'मनु' को 'वैवस्वत' अर्थात् 'विवस्वान्' का पुत्र कहा है; और 'विवस्वान्' सूर्य को कहते हैं। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड के 110वें सर्ग में वसिष्ठ जी ने राम को उसके पूर्वजों की वंश परम्परा बतलाते हुये कहा 'हे राम!' ब्रह्मा का पुत्र मरीची हुआ मरीची का कश्यप, कश्यप का पुत्र सूर्य, सूर्य का पुत्र वैवस्वत मनु और मनु का इक्ष्वाकु हुआ जो संसार का सबसे पहला राजा हुआ। इन तीनों आर्ष प्रमाणों से वंश परम्परा यह है 'पहले सूर्य, फिर मनु और फिर मनु का पुत्र इक्ष्वाकु।'

परन्तु कृष्णदत्त की परम्परा इस के विरुद्ध है वह कहता है कि 'सर्व प्रथम जन्म महाराज मनु का हुआ, उसके पश्चात् उसका पुत्र सूर्य और

सूर्य का पुत्र इक्ष्वाकु हुआ।' इसलिये कृष्णदत्त का यह प्रवचन झूठा है। क्योंकि गीतादि के विरुद्ध है।

(22) 'आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष से कुछ अधिक हुआ जब भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ' कृष्णदत्त का यह कहना भी झूठ है, उसने किसी से सुनी सुनाई बात कह डाली और सुनी सुनाई बात विश्वास के योग्य नहीं होती। पुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध है कि श्री कृष्ण का जन्म महाराजा विक्रमादित्य से 3171 वर्ष पूर्व भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को बुधवार के दिन रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। अतः उनके जन्म को विक्रमी सवंत् 2032 भाद्रपद की कृष्णाष्टमी को 3171+2032 =5203 वर्ष हो गये थे। इसलिये कृष्णदत्त ने 300 वर्षों का झूठ बोला।

(23) 'जिस समय कलियुग के 550 वर्ष बीत जायेंगे, उस समय तुम्हारा एक अज्ञात गृह में जन्म होगा।'

समीक्षा—कृष्णदत्त का कहना है कि उनके 'आदि गुरु ब्रह्मा ने मुझे यह शाप दिया था' कृष्णदत्त का यह कहना सर्वथा झूठ है क्योंकि ऋषि लोग किसी को शाप नहीं देते। दूसरी बात यह है कि ऋषियों और योगियों की वाणी 'अमोघ' होती है, वह कभी झूठ नहीं होती।

परन्तु कृष्णदत्त जिस शाप की बात कहता है उसमें अभी 525 वर्ष शेष है; क्योंकि इस समय कलियुग सवंत् 5076 चल रहा है। सन् 1899 ई० को कलियुग के 5000 वर्ष पूरे हो गये, इसलिये अब 5076 वर्ष हुये कृष्णदत्त ने किसी से सनुा होगा कि महाभारत युद्ध को साढ़े पाँच हजार वर्ष हो गये, बस उसने इसी कारण से ये झूठ बोले। साधारण व्यक्ति के ऐसे कथन भूल कहे जाते हैं झूठ नहीं। अतः वे क्षमा के योग्य होते हैं, परन्तु कृष्णदत्त के प्रवचन समाधि अवस्था के कहे जाते हैं जब कि वह शृङ्गी ऋषि के रूप में होता है। अतः ये झूठ साधारण झूठ नहीं माने जा

सकते। ये झूठ तो किसी व्यक्ति के ऋषि या अनृषि होने की प्रबल कसोटियाँ हैं। इन कसोटियों पर परखने से कृष्णदत्त का ऋषि शृङ्गी होना सर्वथा झूठ और धोखे बाजी है।

मैंने ये 23 ऐतिहासिक घटनायें इसलिये दी हैं कि इन बातों को सर्वसाधारण भी सरलता से समझ सकते हैं। ये महाभारत युद्ध के बाद की घटनायें हैं। इन के प्रमाणों को खोजा जा सकता है। इसलिये कृष्णदत्त के प्राचीन इतिहास सम्बन्धी प्रवचनों की सच्चाई को जानने की ये कसोटियाँ हैं। क्योंकि जिस व्यक्ति के प्रत्यक्ष झूठ को परख लिया गया है, उसकी परोक्ष की बातों पर कौन विश्वास कर सकता है! इसलिये पाठकों को निष्पक्ष होकर यह विचार करना चाहिये कि जिस व्यक्ति के 23 झूठ हमारे सामने सिद्ध हो चुके हैं तो उसकी शेष बातों को हम आँखें बन्द करके सच कैसे मान सकते हैं? मैंने कृष्णदत्त के प्रवचनों में से पाँचसौ झूठ चुने हुये हैं। जिनको मैं युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध कर सकता हूँ परन्तु उनको पुस्तक रूप में छपवाने में काफी समय और पर्याप्त धन की आवश्यकता है। इसलिये कृष्णदत्त के ये थोड़े से पाखण्ड और झूठ ही पाठकों के सामने रखे हैं, इनके प्रकाश में पाठकों को स्वयं ही उसके प्रवचनों में पाखण्ड और झूठ दृष्टि गोचर होने लगेंगे।

परमात्मा कर्ता है या अकर्ता

कृष्णदत्त के आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान के ढोल की पोल बात इस से भी खुल गई कि जब 12-4-69 को सायं चार बजे योग निकेतन ऋषिकेष में श्रीस्वामी योगेश्वरानन्द जी ने ब्रह्मचारी जीं से एक प्रश्न किया कि 'इस संसार का निर्माण करने वाला या जिससे यह निर्माण होता है। वह सगुण है या निर्गुण। यदि इसको हम सगुण मानते हैं तो वह

परिणाम भाव को प्राप्त होने वाला होगा चाहे वह जड़ हो या चेतन हो। यदि हम उसको निर्गुण मानते हैं। तब वह किस प्रकार से संसार का रचयिता होगा?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये ब्रह्मचारी जी ने इधर-उधर बहुत हाथ पैर मारे, अपने ऋषि होने के ढोंग से बचाने के लिये खूब सिर और गर्दन को हिलाया खूब झकझक की और 43 पृष्ठों में इसके प्रवचनों का टेपरिकार्ड करके अनुसन्धान समिति ने भी व्यर्थ कागज काले किये। परिणाम क्या हुआ? खोदा पहाड़ निकला चूहा! अनपढ़ तमाशायी लोगों को इधर-उधर के झूठे किस्से कहानियों को सुनाकर तो अनपढ़ लोग भी हजारों लोगों को मुग्ध कर देते है, परन्तु किसी पढ़े लिखे व्यक्ति को किसी आध्यात्मिक प्रश्न का सन्तोष जनक उत्तर देना तो टेड़ी खीर है। अपनी आदत के अनुसार प्रश्न के उत्तर को झमेले में डालने के लिये एक काल्पनिक कहानीं घड़ी और सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होने वाले वायु आदित्य और अंगिरा ऋषियों में विवाद छिड़वा दिया। आपने कहा—

"तो हमारे यहाँ आदि आचार्यों के भिन्न-भिन्न प्रकार के उसमें विचार हैं। महर्षि वायुजी का विचार कुछ और है, अंगिराजी का विचार और है। मैं उन विचारों को तुम्हारे समक्ष नियुक्त किये देता हूँ अब जो तुम्हारे समक्ष आँगन में आये उसे स्वीकार कर लेना।" आगे उन ऋषियों के विचारों में भिन्नता दिखाने के लिये ऊलजलूल भाषा का प्रयोग करके गुड़ गोबर एक कर दिया, जिसको कोई समझ भी नहीं सकता और सच बात यह है कि इस विषय को कृष्णदत्त स्वयं नहीं समझता तो दूसरों को समझावे ही क्या? उसे यह भी पता नहीं व्यापक किसको कहते है व्याप्य किहको? उसे यह भी पता नहीं कि प्रकृति क्या है? वह कभी पृथिवी को प्रकृति कहता है, कभी पञ्च महाभूतों को; कभी प्रकृति की

रचना मानता है और कभी प्रकृति के स्वाभाविक गुणों की उत्पत्ति! फिर वह कहता है—

"मानो ब्रह्म जो वह इस प्रकृति का वास्तव में वायुजी ने कर्त्ता स्वीकार नहीं किया।" इस वाक्य के अर्थ को हर व्यक्ति नहीं समझ सकता! परन्तु गूंगे की बात को गूंगे की माँ ही समझ सकती है! हमने इसका अर्थ यह समझा कि कृष्णदत्त यह कहना चाहता कि "वायुजी ब्रह्म को प्रकृति का कर्ता स्वीकार नहीं करता।" परन्तु मेरा यह कहना है कि स्वामी योगेश्वरानन्द जी का यह प्रश्न नहीं था कि 'ब्रह्म प्रकृति का कर्ता है?' बल्कि उनका प्रश्न तो यह था कि—

"यदि हम उसको निर्गुण मानते हैं। तब वह किस प्रकार से संसार का रचयिता होगा।" स्वामी योगेश्वरानन्द जी सभी वैदिक धर्मियों की तरह त्रैत वादीं है, वह जानते है कि प्रकृति नित्यपदार्थ है उसका कोई कर्ता नहीं। तो कृष्णदत्त ने यह उत्तर क्यों दिया कि ब्रह्म प्रकृति का कर्ता नहीं? जब उसमें प्रश्न को समझने की भी योग्यता नहीं तो उसका उत्तर वह कैसे दे सकता था? अपनी अनभिज्ञता पर पर्दा डालने के लिये वायुजी से कहलवाता है—

"यहाँ वेद के कुछ मन्त्र स्पष्टता देते चले जा रहे हैं। उन्होनें कहा है। **"ब्रह्म' विश्वा रहनमम् आप्रति रुद्रों असवत्रि कृतिरुद्रा:"** वेद का आचार्य कहता हैं वेद के मन्त्र को लेकर के कि "वास्तव में सूक्ष्म से संनिधान से सूक्ष्म से मिलान से मानो यह नहीं हो सकता कि वह प्रकृति का रचयिता हो गया है।" यह है कृष्णदत्त की धोखेबाजी, कि उसने संस्कृत के कुछ उलटे-सुलटे 20, 30 शब्द रटे हुये है, उन्हीं को उलट-पलट कर बोल देता है और उनको वेद मन्त्र कह देता है। यद्यपि इस शब्द समूह का कुछ भी अर्थ नहीं निकलता?

कृष्णदत्त ने वायु जी का यह सिद्धान्त बतलाकर कि वह ब्रह्मा को अकर्ता मानते है उसके साथ विवाद करने के लिये उसके समीप महर्षि आदित्य जी और अंगिरा जी आदि ऋषियों का एक समाज एकत्रित करा दिया और साथ ही उनके विचारों का खण्डन कराने के लिये महर्षि तत्वमुनि जी के मुख से कहलवा दिया कि 'हम आपके विचारों से सहमत नहीं।' कृष्णदत्त की यह काल्पनिक कहानी और आदिम ऋषियों का परस्पर का विचार वैमत्य और परस्पर वाद विवाद एक विकृत मस्तिष्क की परेशानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है! सृष्टि के आदिम काल से लेकर अर्थात् ब्रह्मा से लेकर आज तक के ऋषि दयानन्द तक यह मानते चले आये हैं कि चारों मूलवेद सँाहितायें सृष्टि के आदिकाल में परमेश्वर की प्रेरणा से उन आदिम महर्षियों के हृदयों में प्रकाशित हुई जिनके हृदय स्फटिक मणि के समान सर्वथा निर्मल निर्विकार और निर्दोष थे, जिनको परमात्मा ने अपनी कल्याणी वाणी का सर्वोत्तम अधिकारी माना उनके नाम थे—महर्षि अग्नि, महर्षि वायु, महर्षि आदित्य और महर्षि अंगिरा। चूँकि उन ऋषियों के हृदय सर्वथा निर्मल थे उनके अन्दर अपने पूर्व जन्म के कोई संस्कार शेष नहीं रह गये थे क्योंकि वे मुक्ति से लौटी हुई मुक्तात्मायें थी उनकी केवल कर्म देह थी भोग देह नहीं! इसलिये उनके हृदय में जो वेदज्ञान का प्रकाश हुआ वह परमात्मा का ही ज्ञान था। यद्यपि हृदय चार थे परन्तु उनमें ज्ञान का प्रकाश परमात्मा का ही था इसलिये उस ज्ञान के प्रकाश को अपौरुषेय वेद ज्ञान कहा गया। महर्षि कपिल ने वेद के सम्बन्ध में कहा है—'न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्' अर्थात् वेद के बनाने वाला कोई मनुष्य नहीं इसलिये अपौरुषय हैं, फिर आगे कहा—

'निज शत्तक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्' अर्थात् वेद का प्रकाश परमात्मा ने अपनी शक्ति से किया है इसलिये वेद स्वतः प्रमाण है। जब

चारों ऋषियों के हृदयों में परमात्मा के ज्ञान का प्रकाश सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश के समान देदीप्यमान हो रहा था तो उनके हृदयों में विरुद्ध भावनायें कैसे उत्पन्न हो सकती थीं? उन ऋषियों के विचारों में भिन्नता तो तभी हो सकती थी जब उनके वेदों में भिन्नता होती अर्थात् चारों वेद भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बनाये हुये होते! वाद-विवाद का मूल 'शंका' होती है और 'शंका' का कारण अज्ञान होता है। जिन ऋषियों के हृदय में परमात्मा ने अपनी निज शक्ति से वेद के सूर्य को प्रकाशित किया हुआ था वहाँ अज्ञान रूपी अन्धेरा कहाँ ठहर सकता था? यह अन्धकार तो कृष्णदत्त के हृदय का है जिसको वह वायु आदि ऋषियों के ऊपर आरोपित कर रहा है। इसलिये आदि ऋषियों में कभी कोई विवाद नहीं हुआ औ न उनमें कोई संघर्ष हुआ और न किसी प्रकार की कटुता ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना के सम्बन्ध में वायु ऋषि का वही सिद्धान्त था जो यजुर्वेद में कहा गया है।

क्योंकि महर्षि वायु के हृदय में यजुर्वेद का प्रकाश हुआ था' और यजुर्वेद में सृष्टि रचना के सम्बन्ध में लिखा है—"किं, स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथमासीत्। यतो भूमि जनयत् विश्वकर्मा विद्यामौर्णान् महिना विश्वचक्षा:।।" यजुर्वेद 17।18

प्रश्न—इस जगत् का (अधिष्ठान) आधार (किं स्वित्) क्या है? अथवा कैसा आश्चर्य मय है और इसका उपादान कारण कौनसा था तथा किस प्रकार का है? जिससे सर्वज्ञ विश्व का कर्ता प्रभु प्रकाश और अप्रकाश लोकों की रचना करके महत्त्व से विविध प्रकार से आच्छादित करता है।

उत्तर—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमि जनयन् देव एक:।।"

यजुर्वेद 17।19।।

अर्थ—सर्वत्र जिसकी दर्शन शक्ति है। और सर्वत्र जिसका उपदेश हो रहा है सर्वत्र जिस की वाहक शक्तियाँ हैं। सर्वत्र जिसकी व्याप्ति है अद्वितीय अकेला दिव्यगुण युक्त प्रभु परमाणु आदि से प्रकाशाप्रकाश सृष्टि को उत्पन्न करता हुआ अपनी धारण शक्ति से जीवन दे रहा है।

यजुर्वेद के 32वें अध्याय का यह मन्त्र भी देखने के योग्य है–

"येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा......योऽन्तरिक्षे रजसो विमान: कस्मै देवाय हविषा विधेम।'

जिस परमात्मा ने द्यौ लोक को उग्र किया है और पृथिवी को दृढ़ किया है .... जो अन्तरिक्ष में लोक लोकान्तरों की रचना करता है, उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम भक्ति किया करें।'

इस मन्त्र से भी परमात्मा का सृष्टि कर्ता होना सिद्ध होता है। इसी प्रकार से चारों वेदों में अनेक मन्त्र हैं जिनसे परमात्मा का सृष्टि कर्ता होना सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम 'ओ३म्' स्वयं इस भाव को प्रकट करता है कि परमात्मा 'सृष्टि कर्ता' है। 'ओम्' शब्द 'अव' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'रक्षा' करना है। जो ईश्वर सब जगत् को उत्पन्न करके सब जीवों की रक्षा करता हैं उसको ओम् नाम से पुकारते हैं। इसलिये यजुर्वेद कहता है—"ओ३म् कृतो स्मर क्लिवे स्मर कृतं स्मर। ओं खं ब्रह्म।" हे कर्मशील मनुष्य ओ३म् का स्मरण कर ताकि तुझे शक्ति मिले। जब यजुर्वेद बड़े जोर के साथ ईश्वर को सकल सृष्टि का कर्ता, धर्ता और संहर्ता कहता है और उसी की उपासना करने का आदेश देता है तो यजुर्वेद के मन्त्रों का द्रष्टा और प्रचारक महर्षि वायु का ईश्वर को 'अकर्ता' कहना बुद्धिमत्ता के विरुद्ध हैं या नहीं कृष्णदत्त का समाधान 'अरब पोंपों' की जालसाजी के समान है। जैसे बनावटी ज्योतिषी से किसी गृहस्थ ने अपनी भावी सन्तान के सम्बन्ध में पूछा तो ज्योतिषी ने एक कागज पर लिखकर दे दिया और

उससे कह दिया कि अपनी स्त्री के प्रसव समय इसको खोलना और मेरे पास आकर अपनी तसल्ली कर लेना। प्रसव के पश्चात् पत्र को खोला गया तो उसमें लिखा था 'लड़का न लड़की।' यदि स्त्री से लड़का उत्पन्न हुआ तो ज्योतिषी जी ने अपनी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुये कहा 'देखो हमने कहा था न? कि लड़का होगा 'लड़की नहीं।' और यदि लड़की हो गई तो कहता हैं हमने कहा था कि 'लड़का नहीं होगा लड़की होगी।' और यदि कुछ न हुआ तो ज्योतिषी जी ने कहा कि हमने पहले ही कह दिया था कि 'न लड़का होगा और न लड़की!' कृष्णदत्त का उत्तर भी इसी प्रकार का है—कृष्णदत्त कहते हैं—देखो मैं कई काल में परमात्मा को कर्ता स्वीकार करता चला आया हूँ, परन्तु कई काल में इसको अकर्ता भी स्वीकार किया गया है .... यह संसार कैसे यह स्वीकार करता है ब्रह्म को बेटा! इस वाक्य में मुझे अधिक जानकारी नहीं है परन्तु मैनें ऋषि मुनियों के सिद्धान्त तुम्हारे सामने नियुक्त किये हैं।'' इस सन्दर्भ को पढ़कर पाठकों को निश्चय कर लेना चाहिये कि कृष्णदत्त की यह जालसाजी उसी झूठे ज्योतिषी के समान है। कृष्णदत्त को अध्यात्म ज्ञान का अणुमात्र भी पता नहीं वह झूठी कहानी घड़कर जनता को प्रसन्न करना चाहता है। मुझे कृष्णदत्त की कर्त्तव्य विमूढ़ता पर दया भी आती है, मुझे यह भी दिखाई देता है कि शायद कृष्णदत्त की यह अपनी स्वतन्त्र इच्छा न हो! बल्कि अनुसन्धान समिति वाले अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये कृष्णदत्त से इसी प्रकार से काम लेते हों जैसे एक बाजीगर किसी एक लड़के को जमूरा बनाकर उसे तोते की भाँति कुछ बाते रटाते हैं और फिर खेल दिखाने के समय उस लड़के को लिटा देता है और उसके ऊपर चादर डाल देते है और उस से प्रश्न करता है? मेरा अनुसन्धान समिति वालों से सीधा प्रश्न है कि वे अपनी स्थिति को स्पष्ट करें कि वे ईश्वर को सृष्टि का कर्ता स्वीकार करते हैं

या नहीं? यदि वे ईश्वर को सृष्टि का कर्ता स्वीकार नहीं करते तो चारों वेदों में से कोई प्रमाण पेश करें? यदि वे ऐसा प्रमाण नहीं दे सकते तो उन्हें क्यों न नास्तिक और वेद विरोधी घोषित किया जावे?

ईश्वर के कर्त्तृत्व के सम्बन्ध में आर्य समाज का निर्णय

ईश्वर के सम्बन्ध में आर्य समाज का वही निर्णय है जो ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त ऋषि मुनियों का निर्णय है। ऋषि दयानन्द ने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखा है—

1. "प्रथम **ईश्वर** कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक अजन्मा, अनन्त, दयालु, न्यायकारी सब सृष्टि का कर्ता, भर्ता, हर्ता, सब जीवों के कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

10 सृष्टि सकर्तृक है इसका कर्ता पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप तथा योग्य बीजादि बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का कर्ता अवश्य है।

51 सगुण निर्गुण स्तुति प्रार्थनोपासना जो जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो जो गुण नहीं है उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति' शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा से और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुण उपासना कहलाती है।" महर्षि दयानन्द का यह मन्तव्य वेदों पर आधारित है। यदि किसी में साहस है तो इसका खन्डन करके दिखलावे?

स्वामी योगेश्वरानन्द जी के प्रश्न का समाधान

स्वामी योगेश्वरानन्द जी का प्रश्न यह है—"इस संसार का निर्माण करने वाला या जिससे यह निर्माण होता है वह सगुण है या निर्गुण है; यदि उसको हम सगुण मानते हैं तो वह परिणाम भाव को प्राप्त होने वाला होगा। चाहे वह जड़ हो या चेतन हो? यदि हम उसको निर्गुण मानते हैं तब वह किस प्रकार से संसार का रचयिता होगा? यही एक प्रश्न है।"

(पुष्प 11 पृ० 121)।

समाधान—श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में नम्र निवेदन है कि सगुण या निर्गुण का निर्णय करने से पूर्व हमें 'गुण' शब्द पर विचार करना चाहिये। 'गुण' शब्द की भिन्न-भिन्न शास्त्रों ने भिन्न-भिन्न परिभाषायें की हैं। सांख्य शास्त्र में 'गुण' की परिभाषा इस प्रकार से की है—'सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्' (6।39)।

अर्थात् सत्त्व, रजस्, तमस् मूल उपादान (प्रकृति) के धर्म नहीं हैं, अपितु मूल उपादानरूप हैं अर्थात् ये तीन गुण मूल प्रकृति ही हैं। (स्वामी) जी की इस मान्यता का कि 'एक वस्तु में दो विरोधी धर्म नहीं रह सकते का समाधान इस बात से स्वयं हो गया कि सत्त्वादि गुण किसी का धर्म नहीं है इन गुणों के परिणाम या विकार इस प्रकार से होते है—

"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि उभयमिन्द्रियम् तन्मात्रेभ्यो महाभूतानि।"

अर्थात् सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था (कारणावस्था) का नाम प्रकृति है, प्रकृति का पहला विकार महत् है। महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से पञ्च तन्मात्रा और मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ, तन्मात्राओं से

पाँच महाभूत।'' परमात्मा को जब निर्गुण कहा जाता है तो इसका यह अर्थ होता है कि वह जगत् का उपादान कारण प्रकृति नहीं है और इसी लिये जीवात्मा को भी निर्गुण कहा जाता है। 'गुण' शब्द की दूसरी परिभाषा वैशेषिक शास्त्र ने इस तरह की है—

''द्रव्याश्रय्यऽगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुण लक्षणम्।'' (वै० 1।76)।

अर्थात् गुण के लक्षण ये हैं—गुण उनको कहते हैं जो किसी द्रव्य का आश्रय अवश्य करते हों। और जो किसी का गुण न हो तथा संयोग विभाग में अनपेक्ष कारण न हों।'' वैशेषिक ने इन गुणों की संख्या 24 गिनाई हैं। इन 24 गुणों में 8 गुण ईश्वर में बताये जाते हैं जैसे—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, ज्ञान इच्छा और प्रयत्न। ये गुण सांख्य के तीन गुणों से सर्वथा भिन्न है। सांख्योक्त गुण परिणामी हैं, वे जगत् का उपादान कारण हैं; परन्तु वैशेषिक में कहे हुये गुण अपरिणामी हैं, वे जगत् का उपादान कारण नहीं, वे परमाणु रूप नहीं न वे द्रव्य हैं अपितु द्रव्य में रहने वाले हैं क्योंकि ईश्वर भी द्रव्य है इसलिये ये आठ गुण ईश्वर में सदा रहते हैं इसलिये ईश्वर को सगुण कहते हैं और इसलिये परमात्मा को सगुण और निर्गुण दोनों नामों से पुकारा जाता है अर्थात् प्रकृति और जीव इन दोनों गुणों से रहित होने से निर्गुण और अपने गुणों से युक्त होने से सगुण है। आप भी तो यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर एक है, सबसे बड़ा है, प्रकृति और जीव से पृथक् है, प्रकृति में व्याप्य सम्बन्ध से रहता है, योग समाधि से व्यापक है, अपने सानिध्य से प्रकृति में क्रिया उत्पन्न करता है और अपनी इच्छा (ईक्षण) से सुषुप्त अवस्था से प्रकृति को जागृतावस्था में ले आता है। इन्हीं आठ गुणों को संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, ज्ञान, प्रयत्न और इच्छा के नाम से कहा जाता है। आप इनको गुण न कहकर ईश्वर का स्वभाव या स्वरूप

कह लीजिये परन्तु इन भावों में सबसे बड़ी आपत्ति यही थी कि ईश्वर को सगुण मानने से उसको परिणामी मानना पड़ेगा, परन्तु आप बतलाइये? कि उसको एक मानने, सबसे बड़ा मानने, सबसे पृथक् मानने, सब में व्यापक होने, सर्वज्ञ मानने, अपने सानिध्य से प्रकृति को प्रेरित करने और शुद्ध ज्ञान से उसकी अनुभूति और अविद्यादि दोषों से उससे दूर (अज्ञानता) होना मानने से परमात्मा में कौन से परिणाम होने की सम्भावना मानते हैं? और इन गुणों से कौन सा विकार आता है? आपने अपने 11-4-69 के प्रवचन में अकर्तृत्व का उदाहरण देते हुये कहा था—"जैसे कि मेरे शरीर में जीवात्मा का सम्बन्ध है और जब तक सम्बन्ध बना हुआ है तब तक अन्त:करण शरीरादि सारे व्यापार करता रहता है, सब कुछ उछलना, कूदना, चलना फिरना, खाना पीना यह सब व्यवहार बने रहते हैं। जब आत्मा का सम्बन्ध शरीर से छूट जाता है तो यह शरीर कुछ भी नहीं करता। तो कर्तृत्व धर्म आदि क्यों न इसी शरीर के माने जायें? आत्मा क्यों न निष्क्रिय या अकर्ता माना जाये।" आपके इस उदाहरण में अव्याप्ति दोष है। जब आत्मा के शरीर में होने से सब काम बन्द हो जाते हैं तो कर्तृत्व आत्मा का मानना चाहिये न कि शरीर का? जिसके होने से जो कार्य होता है और न होने से नहीं होता तो उस कार्य का निमित्त वही होगा, दूसरा नहीं। घर में दीपक के होने से घर में प्रकाश होता है, दीपक के बुझ जाने से प्रकाश नहीं रहता तो यही समझा जाता है कि प्रकाश का निमित्त दीपक ही है, घर नहीं! आप कहते हैं—"भगवान् के सानिध्य मात्र से ही सृष्टि की उत्पत्ति हो सकती है, इसलिये भगवान् को कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं। और किसी भी गुण के मानने की जरूरत नहीं। निर्गुण होने से सर्वव्यापकता उसका कोई गुण नहीं। सूक्ष्मता उसका भी कोई गुण नहीं है। चैतन्यता भी उसका गुण नहीं है। वह चैतन्य है .... तो सब से

सूक्ष्म होने से उसके सानिध्य मात्र से व्याप्यव्यापक भाव से सम्बन्ध से प्रकृति स्वयं ही संसार का सृजन करती रहेगी .... प्रकृति के साथ नित्य सम्बन्ध होने से प्रकृति में भी कर्तृत्व धर्मादि उत्पन्न हो जाते हैं।" आप ईश्वर में किसी भी गुण का न होना मानते हैं परन्तु फिर भी आपने उसको भगवान् मानकर 6 गुण (ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य) तो मान ही लिये साथ ही सूक्ष्मता (अणुपरिमाण) सन्निधान (संयोग) चैतन्य (ज्ञान) इन तीन गुणों को भी मान लिया, यहाँ प्रश्न कई उठते हैं 'एक प्रश्न यह है कि ईश्वर के सानिध्य मात्र से प्रकृति में जो कर्तृत्व उत्पन्न हो जाता है और प्रकृति स्वयं संसार का सृजन करती रहती है तो वह रचना ज्ञान पूर्वक होती है या अज्ञान पूर्वक? यदि अज्ञानपूर्वक होती हैं तो यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। और यदि ज्ञानपूर्वक होती है तो वह ज्ञान किसका है? प्रकृति को तो आप जड़ मानते ही हैं इसलिये यह ज्ञान चैतन्य का होना चाहिये यदि आप सृष्टि की रचना में ज्ञान की आवश्यकता नहीं समझते तो आपके पास क्या प्रमाण है कि ईश्वर में तो आप कर्तृत्व मानते नहीं तो उसके सम्पर्क से प्रकृति में कर्तृत्व कहाँ से आ गया? क्योंकि 'नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्' (सा० 1।79) असत् की उत्पत्ति तो सर्वथा असम्भव है। यदि स्वभाव से प्रकृति में क्रिया है तो ईश्वर के सानिध्य की क्या आवश्यकता है? और फिर ईश्वर के अस्तित्व का क्या प्रमाण है? आपने चुम्बक पत्थर का दृष्टान्त देकर बतलाया है कि जैसे चुम्बक पत्थर के सम्पर्क से लोहे में क्रिया होने लगती हैं वैसे ही ईश्वर के सन्निधान से प्रकृति में क्रिया होने लगती है। तो प्रश्न उठता है कि चुम्बक में कोई विशेष गुण है या नहीं जिससे लोहे में क्रिया होने लगती है? यदि विशेष गुण चुम्बक में नहीं है तो दूसरी वस्तुओं के सम्पर्क से क्रिया उत्पन्न क्यों नहीं होती या बिना चुम्बक लोहा गति क्यों नहीं करने लगता इससे स्पष्ट है कि चुम्बक में विशेष

शक्ति या गुण है जिससे लोहे में क्रिया उत्पन्न होती है। इसी प्रकार से ईश्वर में विशेष ज्ञान और प्रयत्न हैं जिससे प्रकृति में ज्ञानपूर्वक रचनायें होती है। यह ज्ञान और प्रयत्न ईश्वर के गुण हैं इसलिये उसी को कर्ता कहा जाता है। महर्षि कपिल का कहना है—"राग विरागयो र्योग: सृष्टि:"

अर्थात् पुरुष और प्रकृति के योग से सृष्टि की उपत्ति होती है। आगे उन्होनें कहा—

"अकार्यत्वेऽपि तद्योग: पारतन्त्र्यात्, स हि सर्ववित् सर्वकर्ता, ईदृशेश्वर सिद्धि: सिद्धा।" (सा० 3।55, 56, 57,)

अर्थात्-"यद्यपि ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं तथापि सृष्टि की रचना में उसका योग है क्योंकि सृष्टि परतन्त्र है और परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वकर्ता है और इसी तरह के ईश्वर की सिद्धि की जा सकती हैं।"

ईश्वर को अकर्ता मानने वाले तीन समुदाय हैं जो वेदों के कट्टर विरोधी हैं वे हैं—चारवाक, बौद्ध और जैन।

कोई वैदिक धर्मी ऐसा नहीं जो ईश्वर को सृष्टि कर्ता न मानता हो, कृष्णदत्त में अपनी योग्यता तो है नहीं उसने स्वामी योगेश्वरानन्द के प्रवचनों को सुना और उनसे प्रभाविन हो गये और उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुये उनके सिद्धान्तों और तर्कों को ज्यों का त्यों अपने प्रवचन में कह डाला और चालाकी की यह की कि योगेश्वरानन्द जी की सब मान्यताओं को वेदों के सिद्धान्त बतलाया और चूँकि महर्षि दयानन्द जी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् होने के नाते और परमयोगी होने के कारण ईश्वर को सृष्टि कर्ता मानते थे इसलिये इस विक्षिप्त व्यक्ति ने ऋषि दयानन्द का भरपूर अपमान किया महर्षि दयानन्द का अपमान कैसे? पाठक जरा कृष्णदत्त के वचनों को सुनें—"(महानन्द का प्रश्न) उन्होनें

(आर्यसमाजियों ने) आपके काल के शब्दों से कहा है कि ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त को हम समाप्त कर दिया' (उत्तर) बेटा ... रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का समाज किसी के गुरु के सिद्धान्त को हम स्वीकार नहीं करते, तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि हमें उसके वाक्य को स्वीकार ही करना है। क्योंकि यदि संसार में मानव यह स्वीकार करने लगे कि एक मानव ने जो शब्द उच्चारण किया है वह सार्वभौम सिद्धान्त हो गया हैं ... रहा यह वाक्य कि चाहे कोई दयानन्द आचार्य हो कोई भी मानव हो और इस संसार के ज्ञान विज्ञान को एक सूक्ष्म-सी बुद्धि से अपने आंगन में लाना चाहे तो बेटा! मैं यह वाक्य स्वीकार नहीं कर सकता रहा यह वाक्य कि वेदों से यह वाक्य आते हैं, क्योंकि वेदों का ज्ञान अनन्त हैं एक-एक शब्द की कामनायें व्याख्यायें होती हैं ... हाँ हाँ बेटा? ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दयानन्द के सिद्धान्त को स्वीकार करते हो .... (महानन्द) ऐसा तो नहीं क्योंकि ऋषि मुनियों के तो सभी के विचार स्वीकार कर लेने चाहियें ... (कृष्णदत्त) हाँ हाँ हमारा कोई पृथक् विचार तो नहीं है ... परन्तु रहा यह वाक्य कि हमारे विचारों में परिवर्तन लाना चाहता है तो बेटा! जो तपे हुये विचार होते हैं उनमें परिवर्तन किसी काल में नहीं आया करता है, क्योंकि हमारे विचार परम्परा से तपे हुये हैं। अब तुम संसार के वाक्य को चुनकर हमारे समीप लाओ, तो यह वाक्य स्वीकार नहीं किया जाता ... जहाँ एक वाद हो वहाँ त्रैतवाद की कोई महत्ता नहीं रह जाती है ... इसलिये त्रैतवाद का प्रसार अधिक हुआ क्योंकि वह एक वाद में अधूरे इसलिये थे क्योंकि एक बार वह प्राणी उच्चारण कर सकता है जो मानव ब्रह्मा के स्वरूप में अपनी आत्मा को परिणत कर देता है।" (पुष्प 11 पृ० 221 से 163) इससे स्पष्ट है कि कृष्णदत्त की नियत ऋषि दयानन्द को अपमानित करने की है।

वेद के विरोध में कृष्णदत्त की स्पष्ट अभिव्यक्ति

"संसार में नास्तिक प्राणी वही होते हैं जो वेद के पठन-पाठन करने वाले होते हैं। जो वेद को यह कहता है कि मैं वेद को स्वीकार नहीं करता हूँ वह नास्तिक नहीं।" पाठक जब गहरी दृष्टि से 'वैदिक अनुसन्धान समिति' के साहित्य का अध्ययन करेंगे तो उन्हें निश्चय हो जायेगा कि इस समिति का मुख्य उद्देश्य वेदों के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का विरोध करना है। इसलिय आर्य लोगों को इस पाखण्ड को उखाड़ने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। इतिशम्।।

लेखक की प्रकाशित कुछ अन्य पुस्तकें

1. वृक्ष जीवधारी हैं

बहुत समय से आर्य विद्वानों में इस विषय पर मतभेद चला आ रहा है कि 'वृक्षों में जीव है या नहीं?' श्री स्वामी दर्शनानन्द पं० गङ्गा प्रसाद उपाध्याय व आज के भी अनेक विद्वानों का मत है कि "वृक्ष जड़ हैं।" दूसरी ओर पण्डित गणपति शर्मा व कई विद्वानों का विचार रहा है कि वृक्षों में जीव है। यहाँ भी उल्लेखनीय है कि वनस्पति-विज्ञान भी वृक्षों को जड़ स्वीकार नहीं करता है। इस महत्त्वपूर्ण विषय को तर्क की कसौटी बड़े वैज्ञानिक ढंग से श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री (वर्तमान स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती) जी ने अपूर्व विश्लेणात्मक शैली में सुलझा दिया है और उन्होनें वेदों तथा ऋषि दयानन्द की मान्यता के आधार वृक्षों में जीव की सत्ता को सिद्ध कर दिया है। "वृक्ष जीवधारी है" नामक यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

आज तक वृक्षों को जड़ मानने वाले विद्वान् 13 वर्षों में ... का उत्तर नहीं दे पाये, क्योंकि पुस्तक में तर्क व अकाट्य हैं।

2. मानव शरीर और जीवात्मा

आर्य विद्वानों में इस विषय पर मतभेद चला आ रहा है कि मानव-शरीर में आत्मा का स्थान छाती वाले हृदय में है या शिरस्थ हृदय में? इस आध्यात्मिक समस्या को सुलझाने का महान प्रयास श्री स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी ने इस पुस्तक में किया है। स्वामी जी ने वेदादि प्रमाणों, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपनिषदों, नाड़ी-विज्ञान व प्रत्यक्ष विज्ञान के विस्तृत विवेचन से प्रमाणित किया है कि "जीवात्मा का स्थान शिरोभाग में ही है।"

3. योगी का आत्म-चरित्र एक षडयन्त्र है

जिस प्रकार योगिराज श्री कृष्ण के उदात्त जीवन चरित्र को श्रीमद् भागवत पुराण में पंडित वोपदेव ने मलिन कर रख दिया, इसी प्रकार महर्षि दयानन्द के जीवन में काल्पनिक बातें और चमत्कारों को जोड़कर सस्ती लोक-प्रियता के इच्छुक पंडित दीन बन्धु शास्त्री और योगी सच्चिदानन्द जी ने एक पुस्तक लिखी है "योगी का आत्म-चरित्र"

(एक अज्ञात जीवनी)।

यद्यपि उस समय जागरूकता के अभाव में सार्वदेशिक सभा का भी आंशिक सहयोग इस पुस्तक के प्रकाशन में मिल गया, फिर भी बाद में अनेक माननीय और अधिकृत विद्वानों ने इस पुस्तक को झूठ का पुलन्दा बताया। डाक्टर भवानीलाल भारतीय ने इसे एक नवीन उपन्यास बताया व एक विद्वान् ने इसे पुराण की संज्ञा दी।

इस पुस्तक के जबरदस्त खण्डन में सन् 1973 ई० में ही श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती ने "आर्य मर्यादा" में 32 लेख लिखे थे। उन लेखों व इस विषय से सम्बन्धित सामग्री व उपयोगिता को समझते हुये उस समस्त सामग्री को इस पुस्तक को प्रकाशित कराया गया है। इस पुस्तक के प्रमाण अकाट्य सिद्ध हुये हैं। निर्वाण शताब्दी (1983) में प्रकाशित ग्रन्थ "नव जागरण के पुरोधा ऋषि दयानन्द" में भी इस पुस्तक की चर्चा आई है। इस पुस्तक के अधिकाधिक प्रचार से ऋषि दयानन्द के पावन जीवन की सुरक्षा हो सकेगी।

ये सभी पुस्तकें प्राप्त करने का पता—

डॉ० वीरोत्तम तोमर

D-8, आदर्श नगर, मेरठ

जिला मेरठ (यू.पी.) 250611

e-mail : veerottam@gmail.com

अप्रकाशित पुस्तकें

इनके अतिरिक्त लेखक की अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं जैसे—1. इस्लाम मत पर भारत के मुसलमान भाइयों से एक बिरादराना अपील। 2. ईसाई मत पर—ईसा के मृत्यु का रहस्य। आप ने "**दयानन्द का योग**" विषय पर लेख लिखे हैं।

https://t.me/AryavartPustakalay